MAHIN 1.3

एम.ए.हिन्दी

राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० के अनुसार

संशोधित पाठ्यक्रम

सत्र - १

प्रश्न पत्र क्र. ३

भाषा विज्ञान एवं हिंदी भाषा

(LINGUISTICS)

© UNIVERSITY OF MUMBAI

प्राध्यापक रविंद्र द. कुलकर्णी
कुलगुरू,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

डॉ. अजय भामरे
प्र-कुलगुरु,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

प्राध्यापक शिवाजी सरगर
संचालक,
दूरस्थ आणि ऑनलाईन शिक्षण केंद्र,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

कार्यक्रम समन्वयक : **प्रा. अनिल आर. बनकर**
सहयोगी प्राध्यापक, इतिहास विभाग व
प्रमुख, मानव्यविद्याशाखा,
दूरस्थ आणि ऑनलाईन शिक्षण केंद्र, मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

अभ्यासक्रम समन्वयक : **डॉ. अनिल गोविन्द चौधरी**
सहायक प्राध्यापक,
दूरस्थ आणि ऑनलाईन शिक्षण केंद्र, मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

संपादक एवं लेखक : **डॉ. संध्या एस. गर्जे**
सहायक प्राध्यापक,
दूरस्थ आणि ऑनलाईन शिक्षण केंद्र, मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

लेखक : **डॉ. उद्धव भंडारे**
सहयोगी प्राध्यापक,
चांगु काना ठाकूर कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय,
न्यू पनवेल, फ्लॉट नं. १, सेक्टर - ११, खांदा कॉलनी,
न्यू पनवेल (ई), जि. रायगड

: **प्रा. प्रमोद यादव**
सहायक प्राध्यापक,
दूरस्थ आणि ऑनलाईन शिक्षण केंद्र, मुंबई विद्यापीठ, मुंबइ

ऑक्टोबर २०२४, मुद्रण - १, ISBN - 978-93-6728-568-8

प्रकाशक : संचालक, दूरस्थ आणि ऑनलाईन शिक्षण केंद्र, मुंबई विद्यापीठ,
विद्यानगरी, मुंबई -४०० ०९८.

अक्षर जुळणी व मुद्रण : मुंबई विद्यापीठ मुद्रणालय,
विद्यानगरी, सांताक्रुझ (पूर्व), मुंबई - ४०००९८

अनुक्रमणिका

क्रमांक	अध्याय	पृष्ठ क्रमांक
	सत्र - १	
१.	भाषा	०१
२.	भाषा विज्ञान	११
३.	भाषा विज्ञान का अध्ययन एवं प्रकार	१९
४.	संसार की भाषाओं का वर्गीकरण	३६
५.	भाषा और संप्रेषण – मानवीय एवं मानवेतर भाषा	४६
६.	स्वन विज्ञान	५३
७.	स्वन परिवर्तन	७३
८.	रुप विज्ञान	८१

❖❖❖❖

NAME OF PROGRAM	M. A. (C.B.C.S.)
NAME OF THE COURSE	M. A. (Hindi)
SEMESTER	I
PAPER NAME	Linguistics (भाषा विज्ञान एवं हिंदी भाषा)
PAPER NO.	3
COURSE CODE	33503
LACTURE	60
INTERNAL ASSESSMENT	50
EXTERNAL ASSESSMENT	50
CREDITS & MARKS	4 & 100

Pre requisite :

Three year under graduation of our year under graduation course from any faculty.

Course outcomes :

क) भाषा एवं संप्रेषण के वैज्ञानिक पक्ष की पहचान

ख) हिंदी भाषा के विकास की परंपरा का पड़ताल

ग) भाषिक प्रयुक्तियों की जानकारी

घ) भाषिक कोशल का विकास

MODULE I : (2 CREDITS)

Unit 1 :

क) भाषा - परिभाषा, अतिलक्षण, भाषा व्यवस्था, भाषा व्यवहार

ख) भाषिक संरचना और भाषिक प्रकार

ग) भाषा विज्ञान- परिभाषा, स्वरूप और व्याप्ति, भाषा विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र एवं दिशाएँ

Unit 2 :

क) संसार की भाषाओं का वर्गीकरण

ख) आकृतिमूलक और पारिवारिक वर्गीकरण

ग) भाषा और संप्रेषण - मानव एवं मानवेतर

MODULE II : (2 CREDITS)

Unit 3 :

क) स्वन विज्ञान : वर्गीकरण, स्वरूप, वाग अवयव और उनके कार्य

ख) स्वन, स्वन गुण, स्वनिम एवं संस्वन

ग) स्वन परिवर्तन के कारण और दिशाएँ

Unit 4 :

क) रूप विज्ञान : रूप विज्ञान का स्वरूप, शब्द और रूप, रुपिम और संरूप

ख) शब्द और रूप, अर्थ तत्त्व एवं संबंध तत्त्व

ग) स्वन परिवर्तन के कारण और दिशाएँ

References :

1) भाषा विज्ञान - डॉ. भोलानाथ तिवारी, किताब महल, इलाहाबाद |
2) हिन्दी भाषा और लिपि - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, हिंदुस्तानी, एकेडेमी, प्रयाग |
3) भाषा विज्ञान एवं भाषाशास्त्र - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी |
4) हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. भोलानाथ तिवारी, वाणी, प्रकाशन, दिल्ली |
5) भाषा विज्ञान की भूमिका - देवेन्द्रनाथ शर्मा, दिप्ति शर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली |
6) व्यावहारिक हिन्दी व्याकरण - श्यामचन्द्र कपूर, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली |
7) व्यावहारिक हिन्दी व्याकरण एवं रचना - डॉ. संतोष चौधरी, कनक सक्सेना, आस्था प्रकाशन, जयपूर |
8) मानक हिन्दी व्याकरण और रचना - डॉ. हरिवंश तरुण, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली |
9) हिन्दी व्याकरण - पं. कामना प्रसाद गुरु, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी |
10) आधुनिक भाषा विज्ञान के सिद्धान्त - डॉ. राम किशोर शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली |
11) हिन्दी व्याकरण और रचना - वासुदेवनंदन प्रसाद, भारती भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली |
12) हिन्दी शब्दानुशासन - आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, नागरीप्रचारिणी, सभा, वाराणसी |
13) आधुनिक भाषा विज्ञान - डॉ. राजमणि शर्मा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली |
14) हिन्दी भाषा इतिहास और संरचना - डॉ. हरिश्चंद्र पाठक, तक्षशीला प्रकाशन, नई दिल्ली |
15) मानक हिन्दी व्याकरण - डॉ. पृथ्वीनाथ पाण्डेय, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद |
16) सामान्य भाषा विज्ञान - डॉ. बाबूराम सक्सेना, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग |
17) भाषिकी हिंदी भाषा तथा भाषा शिक्षण - डॉ. अंबादास देशमुख, शैलजा प्रकाशन, कानपूर |
18) भाषा विज्ञान के अधुनातन आयाम - डॉ. अंबादास देशमुख, शैलजा प्रकाशन, कानपूर |
19) हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास - भाग दूसरा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी |

❖❖❖❖

१

भाषा

इकाई की रूपरेखा :

१.१ इकाई का उद्देश्य
१.२ प्रस्तावना
१.३ भाषा की परिभाषा
१.४ अभिलक्षण
१.५ भाषा व्यवस्था और भाषा व्यवहार
१.६ भाषा संरचना
१.७ भाषिक प्रकार्य
१.८ सारांश
१.९ लघुत्तरीय प्रश्न
१.१० दीर्घोत्तरी प्रश्न
१.११ संदर्भ ग्रंथ

१.१ इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन के बाद निम्नलिखित मुद्दों से आपका परिचय होगा।

i) भाषा की अवधारणा तथा उसका स्वरूप स्पष्ट होगा।

ii) भाषा की परिभाषा तथा उसके अभिलक्षण से परिचय होगा।

iii) व्यवस्था और व्यवहार के रूप में भाषा की भूमिका स्पष्ट होगी।

iv) भाषा की संरचना से परिचय होगा।

v) भाषा का प्रकार्य क्या है, इसकी जानकारी मिलेगी।

१.२ प्रस्तावना

भाषा, मानव-समाज का आधार है। बिना भाषा के मनुष्य का सामाजिक जीवन असंभव है। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में मनुष्य की प्रत्येक गतिविधि के मूल में भाषा ही होती हैं। भाषा के बारे में बात करनी हो तो भी भाषा की ही मदद लेनी पड़ती है। इस धरती पर कोई मानव-समाज नहीं जिसकी अपनी भाषा न हो। मानव विकास का मूल आधार भी भाषा ही है। मानव सभ्यता की प्रक्रिया भी भाषा के साथ और भाषा के सहारे ही विकसित हुई। लगभग ७०,००० साल पहले मानव-समाज में भाषा का जन्म हुआ और तब से अनवरत भाषा

विकसित, परिवर्तित होती रही और मरती भी रही। १०,००० बरस पहले वर्तमान भाषाएँ अपना रूपाकार ग्रहण करने लगीं। यूनेस्को के अनुसार पूरी दुनिया में कुल ७,००० भाषाएँ हैं। जिनमें से दो तिहाई भाषाएँ तेजी से नष्ट होने की राह पर हैं। हमारे अपने देश में ही लगभग तीन सौ भाषाएँ मरणावस्था में हैं। भाषा कोई जड़ अवधारणा या सिर्फ सूचना प्रदान करने का माध्यम भर नहीं हैं। विगत दस हजार बरसों में भाषा के विषय में चिंतन-मनन हुआ है।

मनुष्य अपने परिवेश में अपने बौद्धिक सामर्थ्य के आधार पर अनुकरण के माध्यम से बड़ी सहजता से भाषा अर्जित कर लेता है। भाषा, उसके लिए सहज उपलब्ध होती है अतः वह भाषा के अध्ययन को लेकर सजग या गंभीर नहीं होता। जिसे हम आधुनिक भाषा विज्ञान कहते हैं उसका इतिहास सौ-सवा सौ वर्षों से अधिक का नहीं है। हाँलाकि भारत में भाषा के प्रति सजग भाव वैदिक काल में ही उत्पन्न हो चुका था। दुनिया में सबसे पहले भाषिक ध्वनियों पर अध्ययन भारत में ही आरंभ हुआ। प्रस्तुत इकाई में हम 'भाषा' की अवधारणा स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे।

१.३ परिभाषा

'भाषा', शब्द 'भाष' धातु से विकसित हुआ है जिसका अर्थ है, 'बोलना' या 'कहना'। इसका प्रयोग सामान्य रूप से मनुष्यों की भाषा के लिए किया जाता है। हाँलाकि पशु-पक्षियों तथा अन्य जीवों की भी अपनी भाषा होती हैं।

डॉ. मंगलदेव शास्त्री के अनुसार "'भाषा' मनुष्यों की उस चेष्टा या व्यापार को कहते हैं जिससे मनुष्य अपने उच्चारणोपयोगी शरीरावयव से उच्चारण किए गए वर्णात्मक या व्यक्त शब्दों द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं। (व्यक्ता वाचि वर्णां येषां त इमे व्यक्तवाचः - महाभाष्य १/३/४८)"

ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित साहित्यकार, समीक्षक प्राध्यापक और चिंतक भालचंद्र नेमाडे के अनुसार "मानवीय संप्रेषण की व्यवस्था ही भाषा है।"

डॉ. मिलिंद मालशे भाषा को समाजीकरण की प्रक्रिया का अविभाज्य अंग मानते हैं।

प्लेटो के अनुसार 'विचार आत्मा की मूक या अध्वन्यात्मक बातचीत है, पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है तो उसे भाषा की संज्ञा देते हैं।'

'स्वीट' कहते हैं - 'ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों को प्रकट करना ही भाषा हैं।'

वांद्रिए भाषा को प्रतीकात्मक चिन्ह मानते हैं - भाषा एक प्रकार का चिन्ह है। चिन्ह से आशय उन प्रतीकों से है जिनके द्वारा मानव अपना विचार दूसरों पर प्रकट करता है। ये प्रतीक कई प्रकार के होते हैं, जैसे नेत्रग्राह्य, श्रोत्रग्राह्य और स्पर्शग्राह्य। वस्तुतः भाषा की दृष्टि से श्रोत्रग्राह्य प्रतीक ही सर्वश्रेष्ठ हैं।

ब्लॉक तथा ट्रेगर के अनुसार - A language is a system of arbitrary vocal symbols of means of which of society group cooperates.

स्त्रुत्वाँ इसमें कुछ और भी जोड़ देते हैं - A language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which members of a social group cooperates and interact.

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका लिखता है - Language may be defined as an arbitrary system of vocal symbols by means of which human beings, as members of a social group and participants in culture interact and communicate.

डॉ. भोलानाथ तिवारी उपर्युक्त सभी परिभाषाओंको समन्वित करते हुए कहते हैं - 'भाषा, मनुष्य के उच्चारण अवयवों से उच्चारित यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह सार्थक व्यवस्था है जिसके माध्यम से एक विशिष्ट भाषिक समुदाय का व्यक्ति कहकर, बोलकर, लिखकर अपने भावों, विचारों को अभिव्यक्त करता हैं।'

इन परिभाषाओंके आधार पर यह प्रमाणित होता है कि -

- भाषा संप्रेषण का माध्यम है।
- भाषा का प्रयोग विशिष्ट समुदाय के अंतर्गत होता है।
- भाषा मनुष्य के उच्चारण अवयवों से उच्चरित स्वनों का समूह हैं।
- भाषा में उच्चरित स्वन समूह यादृच्छिक होते हैं।
- भाषा एक सुचिंतित व्यवस्था है।
- भाषा अनुकरण के माध्यम से अपने परिवेश से सीखी जाती है।

यह सच है कि मनुष्य की भाषा पशु-पक्षियों की भाँति सहजात नहीं होतीं। जिस प्रकार पशु पक्षी जन्मते ही बिना किसी प्रयास के बोलने लगते हैं, उस प्रकार मनुष्य नहीं बोल पाता। उसे भाषा संप्रयास सीखनी पड़ती है। इतना ही नहीं वह प्रयत्न करके अन्य कई भाषाएँ भी सीख सकता है जो मानवेत्तर जीवों के लिए असंभव है। भाषा सीखने और प्रयोग करने की कला मनुष्य ने लाखों वर्षों में अर्जित की हैं। मनुष्य के मस्तिष्क में कुछ विशिष्ट स्थान ऐसे होते हैं जहाँ ध्वनियों का संग्रह, शब्द निर्माण, वाक्य रचना आदि का निर्माण होता है जिन्हें वाक अवयवों के माध्यम से उच्चरित रूप प्रदान किया जाता है। अतः भाषिक सामर्थ्य मानव समाज ने लाखों वर्षों के प्रयास से अर्जित किया तथा विशिष्ट भाषा का अर्जन मनुष्य अपने व्यक्तिगत प्रयास से करता है। भाषा विज्ञान में मनुष्यों की इसी भाषा का अध्ययन किया जाता है।

इस उच्चरित भाषा के अतिरिक्त भी मानव समाज में अभिव्यक्ति तथा संप्रेषण की अन्य अभिव्यक्तियाँ बड़ी सहजता से प्रयुक्त होती हैं जिनमें सबसे प्रमुख है हाव - भाव। हँसना, आँखे तरेरना, घूरना, गुर्राना, चीखना, हाथ मिलाना, नाक भौं सिकोडना जैसी शारीरिक क्रियाएँ भी भावों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम हैं। कभी - कभी ये इतनी महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि भाषा के साथ-साथ समानांतर इनका प्रयोग होता है। किंतु महत्त्वपूर्ण होने के बावजूद इनकी कतिपय सीमाएँ हैं।

१.४ भाषा के अभिलक्षण

संप्रेषण, किसी भी समुदाय या समूह में जीवन यापन करने वाले जीवों - प्राणीयों की बुनियादी और अनिवार्य आवश्यकता है। मधुमक्खियों की भाषा पर कई अनुसंधान हो चुके हैं और यह प्रमाणित हो चुका हैं कि मधु खोजने और अपने साथियों तक उसकी सटीक सूचना पहुँचाने की उनकी सुनिश्चित संप्रेषण व्यवस्था है। इसी प्रकार अन्य प्राणियों में क्रोध, प्रेम, असुरक्षा, भूख, भय आदि को व्यक्त करने की विशिष्ट ध्वनि पद्धतियाँ हैं जिसका प्रयोग वे सहज रूप से करते हैं और यह संप्रेषण व्यवस्था या भाषा उन्हें आनुवांशिक रूप से प्राप्त होती है। उन्हें मनुष्यों की भाँति भाषा सीखने के प्रयास नहीं करने होते।

इन मानवेतर भाषाओंके परिप्रेक्ष्य में मानव भाषाओंके कतिपय अभिलक्षण उल्लेखनीय है। अमेरिकी संरचनावाद के भाषावैज्ञानिक एवं नृतत्त्वशास्त्री चार्ल्स एफ हॉकेट ने १९६० में प्रकाशित The origin of speech में भाषा के बुनियादी अभिलक्षणों का उल्लेख किया है। जिनमें प्रमुख अभिलक्षण हैं -

१. यादृच्छिकता (Arbitrariness)

२. आंतरविनिमेयता (Interchangeability)

३. सांस्कृतिकता (Cultural Transmission)

४. विविक्तता (Discreteness)

५. विस्थापन (Displacement)

६. उत्पादकता (Productivity)

७. द्वैतता (Duality)

८. विशेषीकरण (Specialization)

९. सामाजिकता

इनके अतिरिक्त भी कतिपय अभिलक्षण हैं जिनकी चर्चा की जाएगी। अभिलक्षण का अर्थ है वह विशेषता जिससे विशिष्ट अवधारणा की पहचान होती है। अंग्रेजी में इसे Features कहते हैं।

१. यादृच्छिकता :

यादृच्छिकता का अर्थ है बिना किसी विशिष्ट वजह के मान लेना। मनुष्यों की भाषा में जिन शब्दों का प्रयोग होता है, उन शब्दों तथा उनके अर्थ के बीच कोई कार्य, कारण, संबंध या कोई एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जाएगी। गाय को गाय ही और पेड़ को पेड़ ही क्यों कहा जाता है। इसका कोई ठोस और मान्य कारण नहीं है। 'गाय' शब्द का वर्तनी में भी उस प्राणि विशेष को कोई चिन्ह या सूत्र नहीं है जिससे कि यह प्रमाणित हो सके कि यह शब्द इस प्राणि विशेष से मौलिक रूप से जुड़ा हुआ है। यदि ऐसा होता तो दुनिया की सभी भाषाओंमें उसे एक ही 'नाम' से पुकारा जाता। जबकि हम जानते है कि विभिन्न भाषाओं में गाय की विभिन्न संज्ञाएँ हैं।

अतः भाषिक ध्वनि प्रतीक बुनियादी रूप से यादृच्छिक होते हैं और उनमें तथा उस विशिष्ट वस्तु, जिसके लिए उनका उपयोग होता है, के बीच कोई सहजात संबंध नहीं होता।

२. आंतरविनिमेयता :

यह मनुष्यों की भाषा का विशिष्ट अभिलक्षण है। मानवीय भाषिक प्रयोग के दौरान एक व्यक्ति वक्ता भी हो सकता है और श्रोता भी। वक्ता और श्रोता की भूमिकाएँ बातचीत के दौरान बदलती रहती है। जैसे राम यदि रहीम से बातचीत कर रहा है तो राम वक्ता की भूमिका में भी होगा और श्रोता की भूमिका में भी। ठीक वैसे ही रहीम भी। पशु-पक्षियों में प्रायः ऐसा नहीं पाया जाता। नर कोयल जब गाता है तब मादा कोयल सिर्फ श्रोता की भूमिका में ही होती है।

३. सांस्कृतिकता :

मानव भाषा आनुवांशिक नहीं होती। वह अपने माता-पिता से जन्मतः प्राप्त नहीं होती जैसे त्वचा, आँखे, बालों का रंग, रूप, आकार। भाषा का अर्जन एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है जिसे शिशु अपने परिवेश से ग्रहण करता है, अर्जित करता है तथा सक्षम हो जाने पर अन्य भाषाएँ भी सीख सकता है।

मनुष्य द्वारा भाषा का सीखा जाना मात्र उसकी मूलभूत आवश्यकताओंकी पूर्ति की अभिव्यक्ति ही नहीं होती। वह भाषा का सौंदर्यपूरक उपयोग भी करने में सक्षम होता है जबकि मानवेतर जगत में भाषा सहजात वृत्तियों से ऊपर नहीं उठ पाती।

४. विविक्तता :

मनुष्य की भाषा में स्वनों से शब्द बनते हैं, शब्दों से वाक्य और वाक्य से प्रोक्ति। न्यूनतम इकाई से आरंभ हुई भाषा एक संपूर्ण अभिव्यक्ति तक अर्थवान होती हुई संप्रेषित होती है। इस समस्त संप्रेषण का सार्थक एवं निरर्थक ध्वनियों में विभाजित किया जा सकता है। एक-एक ध्वनि तथा एक-एक शब्द को, अलग करके भी उनका अध्ययन किया जा सकता है - किंतु मानवेत्तर प्रक्रिया में इस तरह की विविक्तता के लिए कोई स्थान नहीं। कुत्ते का भूँकना या गाय का रँभाना छोटी इकाइयों में बाँटा नहीं जा सकता न तो उनका स्वतंत्र अध्ययन किया जा सकता है।

५. विस्थापन :

विस्थापन, मनुष्य की भाषा का महत्त्वपूर्ण गुणधर्म हैं। इस गुणधर्म से ही मनुष्य की भाषा में ज्ञान तथा सूचनाओंका संचयन संभव हो सका। मानवेतर भाषाएँ, स्थान और काल की सीमा में जकड़ी होती हैं। कोई पशु यह नहीं बता सकता है कि वह कल क्या करेगा? या फिर बीते कल में उस पर क्या बीता था?

मनुष्य की भाषा देशकाल की सीमाओंका अतिक्रमण करते हुए भूत, वर्तमान, भविष्य तथा अपने वर्तमान स्थाने से सर्वथा भिन्न स्थान या पूर्णतः काल्पनिक देशकाल में भी अपनी अभिव्यक्तियाँ संप्रेषित कर सकने में समर्थ है। भारत में रहते हुए हम अमेरिका ही नहीं दूसरे ग्रहों की बाते भी कर सकते हैं तथा पृथ्वी के जन्म से लेकर आने वाले समय में पृथ्वी के नष्ट

होने तक की संभावना पर भाषा के माध्यम से विचार कर सकते हैं। मनुष्य के ज्ञान की आधार भूमि है | यही भाषा का यह अभिलक्षण है।

६. उत्पादकता :

सुप्रसिद्ध चिंतक और भाषा विज्ञानी नोऑम चॉम्स्की का कहना है - 'भाषा सीमित नियमों के माध्यम से असीमित वाक्यों को प्रजनित करनेवाली व्यवस्था है।'

अंग्रेजी में २६ अक्षर हैं तो देवनागरी में लगभग ५२ अक्षर किंतु इन अक्षरों से लाखो शब्द बनाये जा सकते है और इन लाखों शब्दों से करोड़ों वाक्यों की रचना की जा सकती है। इन वाक्यों को विभिन्न काल, वचन, कारक में पुनः रचा जा सकता हैं। पुनरूत्पादन की यही प्रक्रिया भाषा में उत्पादकता कहलाती है। इतना ही नहीं एक ही वाक्य का विभिन्न लहजे में, भिन्न भावों और संवेदनाओंके तहत ध्वनियों के उतार चढाव के माध्यम से भी अनेक रूपों में अभिव्यक्त किया जा सकता है।

७. द्वैतता :

द्वैतता अथवा संरचनागत द्वित्व मानव भाषा का एक और प्रमुख अभिलक्षण है। भाषा की संरचना दो स्तरों पर अभिव्यक्त होती है। किसी शब्द में जो स्वर-व्यंजन-अक्षर होते हैं वे प्रायः निरर्थक होते हैं। फिर उनसे जो शब्द बनते हैं। इसके पश्चात् इनसे जो वाक्य बनते हैं वे भी एकाधिक अर्थ की अभिव्यक्ति करने में समर्थ होते हैं। इस तरह भाषा संरचना और अर्थ के स्तर पर कई रूप धारण करती है।

जैसे मानव शब्द में म + आ + न् + अ + व + अ स्वतंत्र ध्वनियाँ होती हैं जिनका अपना कोई अर्थ नहीं होता किंतु इनसे बना 'मानव' शब्द का एक ओर मनुष्यों के लिए प्रयुक्त होता है व दूसरे 'मनु' शब्द का विशेषण भी मानव हैं।

८. विशेषीकरण :

मनुष्य की भाषा एक विशिष्ट प्रयास का प्रतिफल होती है। यदि कोई व्यक्ति हँस रहा हो तो उससे उसकी खुशी का पता चल जाता है किंतु उसे जब यही भाव भाषा के माध्यम से व्यक्त करने हो तो उसे विशिष्ट शब्दों, विशिष्ट वाक्य रचना तथा लहजे का प्रयोग करना पड़ता है तब जाकर उसकी खुशी या आनंद की अभिव्यक्ति हो पाती है। यह विशिष्ट प्रयास ही भाषा का अनोखा अभिलक्षण है।

९. सामाजिकता :

भाषा समाज में ही पैदा होती है और उसका प्रयोग भी विशिष्ट भाषिक समाज में ही होता है। भाषिक प्रयुक्तियों के विशिष्ट सामाजिक संदर्भ भी होते हैं जिन्हें भलीभाँति समझे बिना भाषा को सही अर्थों में समझना मुश्किल होगा। प्रत्येक समाज जीवनयापन की जिस व्यवस्था में होता है, उसका प्रभाव, उसकी भाषा पर पड़ता है। ग्रामीण, वनवासी, शहरी, कस्बाई और महानगरीय समाज की भाषाओंमें जो फर्क होता है, उसकी यही वजह होती है। बंजारे या घुमंतू जातियों की भाषा स्थिर समाज की भाषा से नितांत भिन्न होती है। इसी तरह

विभिन्न धार्मिक समाजों की भाषा में भी धार्मिक मान्यताओं, रीति रिवाजों, संस्कारों आदि की वजह से भी परिवर्तन देखने को मिलता है।

इनके अतिरिक्त भाषा के और भी अभिलक्षण हैं जो उसे विशिष्ट बनाते हैं।

१.५ भाषा - व्यवस्था और भाषा व्यवहार

भाषा व्यवस्था तथा भाषा व्यवहार की दृष्टि से भाषा अध्ययन की शुरुआत एफ. डी. सस्यूर ने की। सस्यूर का जन्म जिनेवा में २६ नवंबर १८५७ में हुआ। वे स्विस भाषा वैज्ञानिक तथा चिंतक थे। इन्हें आधुनिक भाषाविज्ञान का जनक भी कहा जाता है। ५५ वर्ष की आयु में २२, फरवरी १९१३ का स्विट्जरलैंड में उनका निधन हुआ।

भाषा संबंधी उनकी प्रमुख स्थापनाएँ इस प्रकार है -

१) सस्यूर भाषा के दो पक्ष मानते हैं - विचार और ध्वनि। विचार मानसिक होते हैं जबकि ध्वनि भौतिक सत्ता है। ध्वनि पदार्थ है और भाषा अमूर्त है।

२) सस्यूर भाषा को संकेत व्यवस्था मानते हैं। उनका कहना है कि भाषा वह संकेत (चिन्ह) है जो संकेतिक से माध्यम से संकेतिक को व्यक्त करता है। जैसे 'गाय' एक शब्द संकेत है जिसे सुनकर या पढ़कर हमारे मन में गाय का बिंब उपजता है, जिससें हमें 'गाय' नामक प्राणी का बोध होता है। यहाँ 'गाय' शब्द संकेत हैं, गाय का बिंब संकेतक है और गाय नामक प्राणी संकेतिक है।

३) सस्यूर भाषा को संकेत चिन्ह मीमांसा के रूप में ही देखने का आग्रह करते हैं।

सस्यूर ने भाषा के दो पक्ष सुझाए। एक को Langur कहा और दूसरे को Parola डॉ. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव ने एक को भाषा व्यवस्था कहा और दूसरे को भाषा - व्यवहार।

सस्यूर के अनुसार प्रत्येक भाषा एक भाषिक अर्थात चिन्हात्मक व्यवस्था होती है। यह व्यवस्था मानक, आदर्श और स्थिर होती है। इस व्यवस्था के तहत व्यक्ति जब भाषा का प्रयोग करता है तो वह भाषा व्यवहार कहलाता है।

जैसे जब हम हिंदी - भाषा कहते है। तब एक विशिष्ट भाषा का बोध होता है जिसकी अपनी व्याकरणिक व्यवस्था है, जिसके अपने मानक रूप है, मानक उच्चारण हैं, अपनी ध्वनि, रूप, वाक्य व्यवस्था है। किंतु यही हिंदी जब हिमाचल प्रदेश से हैदराबाद तक बोली जाती है तो वह एक सरीखी नहीं होती। स्वयं उत्तर प्रदेश के विभिन्न इलाकों में वह एक-सी नहीं बोली जाती। विभिन्न व्यवसाय, विभिन्न जातियाँ; विभिन्न धार्मिक समाज, नगर, ग्रामीण, शिक्षित-अशिक्षित जनों की भाषा भी बिल्कुल अलग होती हैं। फिर भी वह कहलाती है हिंदी भाषा।

जो हिंदी की आदर्श, स्थिर, सर्व स्वीकृत मानक व्यवस्था है। वह भाषा व्यवस्था हैं। प्रत्येक भाषा की अपनी यह विशिष्ट व्यवस्था होती है। किंतु इस व्यवस्था के तहत भाषा का

रोजमर्रा के जीवन में प्रयोग करने वाला विशाल जन समूह जिस भाषा का प्रयोग करता है। वह भाषा व्यवहार है जो व्यवस्था का अभिन्न अंग होने के बावजूद सर्वथा भिन्न है।

१.६ भाषा संरचना और भाषिक प्रकार्य

भाषा संरचना की अवधारणा भी सस्यूर की ही दी गई हैं। उन्होंने भाषा के तीन पक्ष स्वीकार किए है - व्यक्तिगत, सामाजिक तथा सर्वव्यापक। वस्तुतः ये भाषा प्रयोग के तीन स्तर हैं। वैसे भाषा के दो ही पक्ष होते हैं - अनुभूति और अभिव्यक्ति। भाषा विज्ञान में अभिव्यक्ति का अर्थ है ध्वन्यात्मकता तथा अनुभूति स्वनों के द्वारा व्यक्त आशय है।

अभिव्यक्ति पक्ष में ध्वनि और व्याकरण का संयुक्त समावेश होता है।

भाषा संरचना का स्वरूप कुछ इस प्रकार होता हैं -

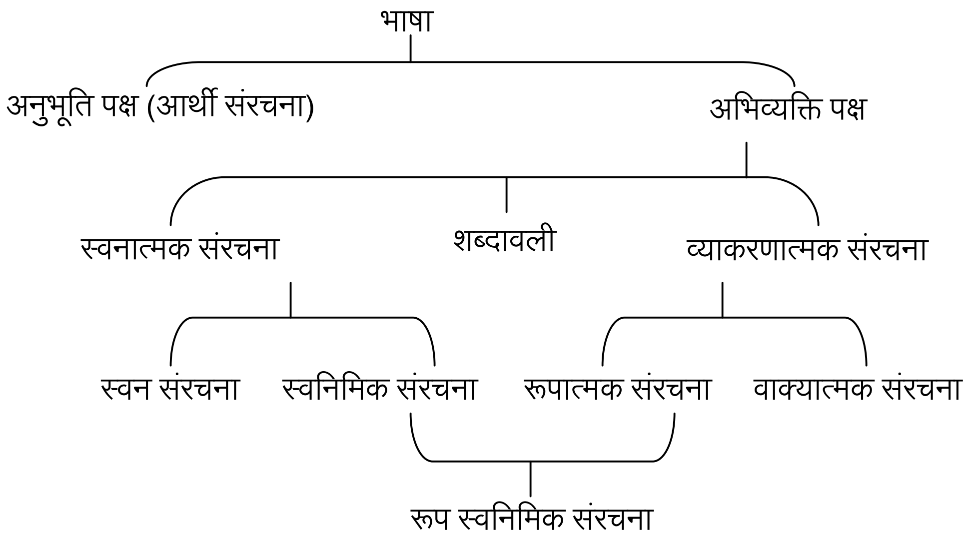

आधुनिक भाषा विज्ञान स्वन तथा अर्थ संरचना को प्रमुख नहीं मानता। उसकी दृष्टि से स्वनिमिक, रूपात्मक तथा वाक्यात्मक संरचना को ही महत्त्व दिया जाता है।

१.७ भाषिक प्रकार्य

यह अवधारणा भी आधुनिक भाषा विज्ञान की ही देन है। रूस में जन्में किंतु अमेरिका को कार्यक्षेत्र बनाने वाले रोमन जाकोब्सन भी संरचनात्मक भाषा विज्ञान के प्रमुख स्तंभ माने जाते हैं। उन्होंने भाषा के छह प्रकार्य बताए हैं। उनके अनुसार भाषा का मूल प्रकार्य संप्रेषण है। संप्रेषण के दौरान छह विभिन्न तथ्य जब उसके केंद्र में आ जाते हैं तो प्रकार्य के छह भेद माने जाते हैं। जो इस प्रकार हैं -

१. अभिव्यक्तिपरक प्रकार्य (Expressive Function) :-

जब संप्रेषण के केंद्र में 'वक्ता' होता है और वह अपनी निजी अनुभूतियों को व्यक्त करता है तो उसे अभिव्यक्तिपरक प्रकार्य कहते हैं।

जैसे - आज मैंने एक कविता लिखी।

२. प्रभावपरक प्रकार्य (Conative Function) :-

इस संप्रेषण के केंद्र में 'श्रोता' होता है। इस संप्रेषण का उद्देश्य श्रोता को प्रभावित करना होता है। इसमें आदेश, निवेदन, प्रार्थना, सल्लाह या सवाल किए जाते हैं।

जैसे - आप सभी को कानून का पालन करना चाहिए।

३. काव्यात्मक प्रकार्य (Poetic Function) :-

इसके केंद्र में 'संदेश' होता है जिसे सौंदर्यात्मक, कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। पाठक या श्रोता इसे पढ़कर या सुनकर वह 'संदेश' ग्रहण करते हैं।

जैसे, साँच बराबर तप नहीं। झूठ बराबर पाप ।।

४. संदर्भपरक प्रकार्य (Referential Function) :-

इस अभिव्यक्ति के केंद्र में 'संदर्भ' होता है। इसमें वक्ता के कथन को समझने के लिए श्रोता द्वारा 'संदर्भ' को समझना आवश्यक होता है।

जैसे घर का भेदी लंका ढाये (संदर्भ - विभीषण)

५. अधिभाषिक या पराभाषिक प्रकार्य (Metalinguistic Function) :-

इस संप्रेषण के केंद्र में 'कोड' होता है। वह 'कोड' परिभाषिक होता है जिसे समझने के लिए 'कोड' को व्याख्या करना जरूरी होता है।

जैसे 'गुरूत्त्वाकर्षण बल के कारण ही सेब धरती पर गिरा' इस अभिव्यक्ति के गुरूत्त्वाकर्षण बल की व्याख्या अपेक्षित है।

६. संबंधपरक प्रकार्य (Phatic Function) :-

इस अभिव्यक्ति के केंद्र में 'सरणि' या 'सूत्र' होता है। जो वक्ता और श्रोता को जोड़ता है। इस अभिव्यक्ति का उद्देश्य वक्ता और श्रोता के बीच संबंध स्थापित करना होता है।

जैसे फोन पर बोलते हुए जब हम 'हलो' बोलते हैं तो श्रोता से जुड़ जाते हैं।

१.८ सारांश

प्रस्तुत अध्याय में विद्यार्थियों ने भाषा, भाषा की परिभाषा, उसके अभिलक्षण, भाषा व्यवस्था और भाषा व्यवहार, भाषा संरचना तथा भाषिक प्रकार्य आदि का अध्ययन किया।

भाषा के बिना मनुष्य का सामाजिक जीवन अधूरा है। मनुष्य के विकास में भाषा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक भाषा से दूसरी भाषा विकसित होती है। साथ ही भाषा का व्यवहार किस तरह होता है, उसे जान सके।

१.९ लघुत्तरीय प्रश्न

१) ’विचार आत्मा की मूक का अध्वन्यात्मक बातचीत है, पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है तो उसे भाषा की संज्ञा देते है।“ यह किसने कहा ?

२) 'भाषा' शब्द किस धातू से विकसित हुआ ?

३) चार्ल्स एफ हॉकेट ने भाषा के कितने अभिलक्षणों का उल्लेख किया है ?

४) सस्यूर भाषा के कितने पक्ष मानते है ?

५) आधुनिक भाषा विज्ञान का जनक कौन है ?

६) ध्वनि पदार्थ है, तो भाषा क्या है ?

७) भाषिक प्रकार्य के कितने भेद है ?

१.१० दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) भाषा की परिभाषा को स्पष्ट करते हुए भाषा के अभिलक्षण की चर्चा करें ?

२) व्यवस्था और व्यवहार के रूप में भाषा की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

१.११ संदर्भ ग्रंथ

१) भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी आचार्य

२) भाषा विज्ञान - डॉ. भोलानाथ तिवारी

३) भाषा और भाषा विज्ञान - गरिमा श्रीवास्तव

❖❖❖❖

२

भाषा विज्ञान

इकाई की रूपरेखा :

२.१ इकाई का उद्देश्य

२.२ प्रस्तावना

२.३ भाषा विज्ञान का नामकरण

२.४ भाषा विज्ञान की परिभाषा

२.५ भाषा विज्ञान का स्वरूप और व्याप्ति

२.६ सारांश

२.७ लघुत्तरीय प्रश्न

२.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न

२.९ संदर्भ ग्रंथ

२.१ इकाई का उद्देश्य

उक्त इकाई के अंतर्गत सम्मिलित बिंदुओंके माध्यम से पाठकों को निम्नलिखित जानकारियाँ दिए जाने का उद्देश्य निहित है।

i) भाषा विज्ञान के नामकरण की जानकारी छात्रों को देना।

ii) भाषा विज्ञान की परिभाषा को स्पष्ट करना।

iii) भाषा विज्ञान का स्वरूप और व्याप्ति पर प्रकाश डालना।

२.२ प्रस्तावना

भाषा विज्ञान उस शास्त्र को कहते हैं, जिसमें भाषा के विभिन्न अंगों का विवेचन और निरुपण किया जाता है। मानव किस प्रकार बोलता है, उसकी बोली का किस प्रकार विकास होता है। उसकी बोली और भाषा में कब, किस प्रकार तथा कैसे-कैसे परिवर्तन होते हैं। किसी भाषा में किसी दूसरी भाषाओंके शब्द किन-किन नियमों के अधीन होकर मिलते हैं। किस प्रकार एक भाषा परिवर्तित या विकसित होकर संपूर्ण रूप से स्वतंत्र एक दूसरी भाषा का रूप धारण कर लेती है। आदि सभी विषयों या इनसे संबंध रखनेवाले उपविषयों का भाषाविज्ञान में समावेश होता है। भाषा विज्ञान की सहायता से हम किसी भी भाषा का वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन एवं अनुशीलन करना सीखते हैं। सही अर्थों में भाषा विज्ञान भाषा और वाणी विषयक सहज कुतूहल को शांत करता है। भाषा विज्ञान भाषा के अध्ययन

की वह शाखा है जिसमें भाषा का वैज्ञानिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाता है। हम इस इकाई के अंतर्गत भाषा विज्ञान का नामकरण, परिभाषा, स्वरूप, व्याप्ति आदि मुद्दों को विस्तार से स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे। भाषा विज्ञान मानव समुदाय के द्वारा व्यवहार में प्रयुक्त किसी भी भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करता हैं। यह बात सभी को ज्ञात है कि भाषा-व्यवहार समाजिक व्यवहार का एक अभिन्न एवं अनिवार्य कारक है। भाषा-विज्ञान में मानव की भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। यह बात कालबाधित सत्य है कि संसार का कोई भी प्राणी भाषा विहीन नहीं होता। इस प्रकार भाषा का महत्व सर्व सिद्ध है। भाषा विज्ञान में भाषा के विविध पक्षों का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत होता है।

२.३ भाषा विज्ञान का नामकरण

भाषा विज्ञान शब्द पाश्चात्य विद्वानों की देन हैं। भाषा विज्ञान को अनेक विद्वानों ने अलग-अलग नामों से अभिहित किया है। भाषा विज्ञान को अनेक लोगों ने भाषा विज्ञान की अपेक्षा भाषिकी, भाषा लोचन, भाषाशास्त्र आदि नाम से अभिहित किया गया।

सही अर्थों में उक्त सभी नाम अँग्रेजी में प्रचलित 'लिंग्विस्टिक' शब्द के अनुवाद के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। अँग्रेजी में 'लिंग्विस्टिक' (Linguastics) तथा 'फिलॉलोजी' (Philology) इन दो शब्दों का प्रयोग भाषा विज्ञान के लिए किया जाता है। व्यापक दृष्टि से कहीं-कहीं 'Science of language' भी कहा जाता है। सर विलियम जोन्स के संस्कृत, लैटिन, ग्रीक के तुलनात्मक अध्ययन में भाषाविज्ञान का आरंभ १७८६ ई. माना जाता है। पाश्चात्य देशों में भाषाविज्ञान को कई नाम दिये गये हैं। इसे सर्वप्रथम 'कम्परेटिव ग्रामर' (Comparative Grammar) नाम दिया गया। इसके उपरान्त इसे 'कम्पेरेटिव फिलॉलोजी' (Philology) कहा गया। डेवीज ने १८१७ में भाषाविज्ञान को 'ग्लासोलोजी' (Glosology) कहा हैं। प्रिचर्ड ने १८४१ इ. में उसे 'ग्लोटोलोजी' (Glotology) नाम दिया। लेकिन भाषाविज्ञान को प्रिचर्ड द्वारा दिया गया नामकरण अधिक दिनों तक चल नहीं सका। परंतु 'फिलॉलोजी' (Philology) शब्द ही इसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त सिद्ध होता है। इस शब्द के मूल धातू ग्रीक भाषा के हैं। 'फिलॉलोजी' (Philology) शब्द में दो शब्द हैं - 'Phil + Logos', 'Phil' का अर्थ है 'word' या 'शब्द' तथा 'Logos' का अर्थ है - 'Science' या विज्ञान। इस प्रकार इसका अर्थ होता है - 'Science of word' शब्द भाषा का वाचक है। 'भाषाविज्ञान' के लिए 'सायन्स ऑफ लैंग्वेज' (Science of Language) नाम भी चलता है। भाषा विज्ञान के लिए आज 'लिग्विस्टिक्स' (Lingustics) नाम अधिक प्रचलित है।

भाषा, विकसनशील, विश्लेषण सापेक्ष यादृच्छिक तथा ध्वनिमूलक सार्थक व्यवस्था होने के कारण इसका विज्ञान स्थिर नहीं हो सकता। इसकी उत्पत्ति के आधार पर ही कहा जा सकता है कि, "भाषाविज्ञान, भाषा-मातृ के अध्ययन से संबंधित एक गत्यात्मक विज्ञान है, जिसका विकास देशकाल के परिवेश में होता है।"

उक्त सभी बातों को ध्यान में लेकर ही भाषाविज्ञान के लिए अनेक नामों का प्रयोग होता आया है। लगभग १८ वीं शताब्दी के अंत तक व्याकरण और भाषाविज्ञान इन दोनों में अंतर स्पष्ट नहीं हो पाया था। इसलिए अनेक विद्वान इसे "तुलनात्मक व्याकरण या कम्पैरेटिव ग्रामर कहते थे। फ्रान्स में इस विज्ञान का नाम 'लिंग्विस्टिक' (Linguistique) पडा।

'Lingustique' या 'Linguistic' केवल भाषाओंकी जानकारी के अर्थ में प्रयुक्त किए जा सकते हैं, लेकिन भाषाविज्ञान का इतना सीमित अर्थ नहीं है, बल्कि बहुत ही विस्तृत है। उसमें तुलनात्मक अध्ययन की अपेक्षा अनिवार्य है। एफ.जी टक्कर ने अपनी किताब 'Introduction to Natural History' में भाषाविज्ञान की व्यापकता को देखकर इसका नाम 'Glattology' या 'Science of Tongue' रखा गया है। लेकिन आगे चलकर यह नाम इसके लिए सटीक और सर्वसमावेशक न लगने के कारण आखिर में 'फिलॉलोजी' (Phlology) नाम ही स्वीकृत हुआ। 'भाषाविज्ञान' तथा 'फिलॉलोजी' दोनों शब्द संस्कृत वाङ्मय से प्रयुक्त होते आए हैं। इसका मतलब उक्त दोनों नाम उचित लगते हैं, जो दोनों ही शब्द संस्कृत से आए हुए हैं।"

वर्तमान समय में भाषाविज्ञान, तुलनात्मक भाषाविज्ञान, भाषाशास्त्र, भाषाविचार, भाषालोचन तथा भाषिकी आदि नाम भी 'भाषाविज्ञान' के लिए प्राप्त होते हैं। परंतु उक्त सभी नामों में से 'भाषाविज्ञान' नाम सर्वाधिक प्रचलित शब्द है जो अँग्रेजी के 'लिंग्विस्टिक्स' का समानार्थी या पर्यायवाची बना हुआ है। भाषाविज्ञान शब्द सहज तथा सरल है, जिससे स्पष्ट होता है भाषा का विज्ञान, जो वैज्ञानिक अध्ययन का भाव प्रकट करता है।

इस प्रकार भाषाविज्ञान भाषासंबंधी जिज्ञासाओंकी तृप्ति करा देने का प्रयास करता है। उसके भिन्न-भिन्न नामों में जो अर्थ छिपे हैं उसके बारे में कहा जा सकता है कि, जिस भाषा से मनुष्य का संबंध दिन-रात रहता है, उसका सांगोपांग परिचय भाषाविज्ञान देता है। भाषा क्या हैं ? उसके अंग क्या हैं ? ध्वनियाँ कैसे निसृत होती हैं ? उसका उच्चारण ? एक से दूसरी ध्वनि का भेद क्यों हो जाता है ? एक भाषा की ध्वनियों में विभिन्न कालों में भेद क्यों हो जाते हैं ? भाषा के स्थान भेद से अनेक रूप क्यों बनते हैं ? संसार की भाषाओंके स्रोत एक हैं या अनेक ? उक्त सभी प्रश्नों के जबाब भाषाविज्ञान ही दे सकता है।

भाषाविज्ञान किसी भी विषय का जो भाषा से संबंधित है उसका संपूर्ण ज्ञान जो ठीक क्रम से संकलित करके रख सकता है। वही ज्ञान संबंधित विषय के अध्ययन कर्ता के लिए उपयोगी साबित होता है। भाषाविज्ञान के नामकरण में भाषाविज्ञान के लिए प्रयुक्त विभिन्न नाम उस विषय की पुष्टि करते हैं ऐसा नहीं है कि सभी अनुचित है। अलग-अलग विद्वान अपनी-अपनी विचारदृष्टि से विषय की सामग्री को देखकर विचार प्रस्तुत करते हैं।

उपर्युक्त संपूर्ण विवेचन के आधार पर भाषा संबंधी व्यवस्थित सूचनाओं का प्रयोग 'भाषाविज्ञान' में दिखाई देता है। भारतीय तथा पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिको ने इसे शब्द बद्ध किया है। यही आधार लेकर हम भाषा का स्वरुप निर्धारित कर सकते है।

२.४ भाषा विज्ञान की परिभाषा

भाषा विज्ञान एक समासयुक्त पद है। 'भाषाया: विज्ञानम् -भाषा विज्ञानम' अर्थात भाषा का विज्ञान, भाषा विज्ञान भाषा और विज्ञान दो शब्दों के संयोग से बना है। 'भाषा' शब्द संस्कृत की 'भास्' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है - 'व्यक्त वाक्' (व्यक्तायाम् वाचि) है। 'विज्ञान' शब्द 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'सा' धातु से 'अन' (ल्युट) प्रत्यय लगाने से बना है। जिसका अर्थ है विशिष्ट ज्ञान इस तरह से 'भाषा' के विशिष्ट ज्ञान को भाषा विज्ञान कहते हैं। भाषा के क्रमबद्ध तथा सुसंगठित अध्ययन को भाषाविज्ञान कहते हैं। इसमें मानव-मुखोच्चरित और

लिखित भाषा-रूपों का अध्ययन किया जाता है । भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानो ने भाषा-विज्ञान की अनेक परिभाषाएँ दी है । उनमें से कुछ विद्वानों की भाषा विज्ञान संबंधी परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं -

१. भाषा विज्ञान संबंधी भारतीय विद्वानों की परिभाषाएँ -

१) डॉ. श्यामसुंदर दास :

"भाषाविज्ञान उस शास्त्र को कहते हैं जिसमें भाषा मात्र के भिन्न-भिन्न अंगों और स्वरूपों का विवेचन तथा निरुपण किया जाता है ।"

२) डॉ. बाबूराम सक्सेना :

"भाषाविज्ञान का अभिप्राय भाषा का विश्लेषण करके उसका दिग्दर्शन करना है ।"

३) डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा :

"भाषाविज्ञान का सीधा अर्थ है, भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान । इस प्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषाविज्ञान कहलायेगा ।"

४) डॉ. भोलानाथ तिवारी :

"जिस विज्ञान के अंतर्गत ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन के सहारे भाषा (विशिष्ट नहीं अपितु सामान्य) की व्युत्पत्ति, गठन, प्रकृति एवं विकास आदि की सम्यक व्याख्या करते हुए इन सभी के विषय में सिध्दान्तों का निर्धारण हो उसे 'भाषाविज्ञान' कहते हैं ।"

५) भोलानाथ तिवारी :

"भाषाविज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषा अथवा भाषाओंका एककालिक, बहुकालिक, तुलनात्मक, व्यतिरेकी अथवा अनुप्रायोगिक अध्ययन, विश्लेषण तथा तद्विषयक सिद्धान्तों का निर्धारण किया जाता है ।"

६) डॉ. मंगल देव शास्त्री :

"भाषाविज्ञान उस विज्ञान को कहते हैं, जिसमें सामान्य रुप से मानवीय भाषा का, किसी विशेष भाषा की रचना और इतिहास का और अन्ततः भाषाओं, प्रादेशिक भाषाओंया बोलियों के वर्गो की पारस्परिक समानताओं और विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है ।"

७) कपिलदेव द्विवेदी :

"भाषाविज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा का सर्वांगीण विवेचनात्मक अध्ययन किया जाता है ।"

८) डॉ. देवीशंकर द्विवेदी :

"भाषाविज्ञान को अर्थात भाषा के विज्ञान को भाषिकी कहते हैं। भाषिकी में भाषा का वैज्ञानिक विवेचन किया जाता है।"

९) डॉ. रामेश्वर दयालु :

"भाषाविज्ञान भाषा संबंधी समस्त तथ्यों एवं व्यापारों से संबंध रखता है। उसमें संसार की भाषाओंके गहन, इतिहास, परिवर्तन, भाषाओंके पारस्परिक संबंध, उनके पार्थक्य, पार्थक्य के कारणों एवं नियमों आदि समस्त विषयों पर विचार होता है।"

१०) डॉ. अम्बादास सुमन :

"भाषाविज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषाओं का सामान्य रूप से या किसी एक भाषा का विशिष्ट रूप से प्रकृति, संरचना, इतिहास, तुलना, प्रयोग आदि की दृष्टि से सिध्दान्त निश्चित करते हुए वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।"

११) आचार्य किशोरीदास वाजपेयी :

"विभिन्न अर्थो में सांकेतिक शब्द समूह ही भाषा है, जिसके द्वारा अपने विचार या मनोभाव दूसरों के प्रति बहुत सरलता से प्रकट करते हैं।"

१२) मनमोहन गौतम :

"भाषाविज्ञान वह शास्त्र है, जिसमें ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा भाषा की उत्पत्ति, बनावट, प्रकृति, विकास एवं ऱ्हास आदि की वैज्ञानिक व्याख्या की जाती है।"

१३) डॉ. देवेन्द्र प्रसाद सिंह :

"भाषाविज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा का सामग्री - संकलन वर्णनात्मक, विकासात्मक, तुलनात्मक, प्रायोगिक या इसमें से किसी भी विधि से विश्लेषण के द्वारा निरुपति सिध्दान्त के आधार पर अध्ययन होता है।"

२) पाश्चात्य विद्वानों की भाषा विज्ञान संबंधी परिभाषाएँ :

१) प्रो. एन. पी. गुने :

"भाषा के विज्ञान को कम्पेरेटिव फिलोलौजी अथवा फिलोलॉजी कहते हैं, साहित्यिक दृष्टि से इसका मुख्य अर्थ भाषा का अध्ययन है।"

“Comparative Philology or simply philology is the science of language Philology strictely means the study of a language from the literary point of view." An introduction to comparative philology.

२. आर. एच. राबिन्स :

"भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन को भाषाविज्ञान कहा जाता है।"

“General Linguistics may be defined as the science of Language." General Linguistics

३. ग्लीसन :

"भाषाविज्ञान भाषा की आन्तरिक रचना के अध्ययन का शास्त्र है।"

४. इनसायक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटैनिका :

"फिलोलॉजी शब्द का अर्थ है भाषा का विज्ञान। अर्थात् भाषाओंकी रचना और विकास का अध्ययन इस दृष्टि से फिलोलॉजी से वही अर्थ लेना चाहिए जो लिंग्विस्टिक्स शब्द से लिया जाता है।"

“The word Philology is here, taken as meaning of science of Language i.e. the study of the structure and development of language, thus, corresponding to Linguistic..."

Encylopaeclia of Britannica

ऊपर दी गई सभी परिभाषाओंपर विचार करने से ज्ञात होता है कि, उनमें परस्पर कोई भी अंतर नहीं हैं। डॉ. श्यामसुंदर दास की परिभाषा में जहाँ केवल भाषाविज्ञान पर ही दृष्टि केंद्रित रही है, वहाँ मंगलदेव शास्त्री एवं भोलानाथ तिवारी ने अपनी परिभाषाओं में भाषा विज्ञान के अध्ययन के प्रकारों को भी समाविष्ट किया है। वास्तविक रूप से वही परिभाषा अच्छी होती है जो संक्षिप्त हो और स्पष्ट हो। इस प्रकार भाषा-विज्ञान की एक नवीन परिभाषा दे सकते हैं - "जिस अध्ययन के द्वारा मानवीय भाषाओं का सूक्ष्म और विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाए, उसे भाषाविज्ञान कहा जाता है।" इसी बात को दूसरे शब्दों में कहे तो - "भाषाविज्ञान वह है, जिसमें मानवीय भाषाओंका सूक्ष्म और व्यापक वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।"

२.५ भाषाविज्ञान का स्वरूप

भाषाविज्ञान शब्द दो शब्दों के संयोग से बना है। 'भाषा' और 'विज्ञान' भाषा का अर्थ है, बोलना और विज्ञान का अर्थ है, वस्तुनिष्ठ विश्लेषण। भाषा विज्ञान अन्य शास्त्रों की अपेक्षा एक नवीन शास्त्र है। इस विज्ञान के अंतर्गत भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। इसमें भाषा से संबंधित सभी अंगों का विस्तार से व्यवस्थित अध्ययन किया जाता है। भाषा से संबंधित विभिन्न प्रश्नों का वैज्ञानिक पद्धति से व्यवस्थित अध्ययन करने के कारण इसे विज्ञान कहा जाता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने के कारण उसे अपने विचार समाज के अन्य व्यक्तियों के सामने प्रकट करने पड़ते हैं। मनुष्य अपने भावों तथा विचारों को जिस माध्यम के द्वारा

अभिव्यक्त करता है, उसे भाषा कहते हैं। इसी बात को दूसरे शब्दों में कहना हो तो - मानव अपने भावों को व्यक्त करने के लिए जिस सार्थक साधन को अपनाता है, उसे भाषा कहते हैं। मनुष्य के विचारों की अभिव्यक्ति भाषा से ही संभव होती है। यह अभिव्यक्ति अनेक प्रकारों से हो सकती है। उदा. सिर हिलाकर, हाथ हिलाकर, हाथ दबाकर, चुटकी बजाकर, हल्दी-सुपारी बाँटकर, निमंत्रण-पत्र के द्वारा, झंडियाँ दिखाकर, ऊँगली दिखाकर, लंबी सांस लेकर, आँख दबाकर आदि।

भाषा केवल भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने का माध्यम नहीं बल्कि चिंतन, मनन, विचार का भी साधन है। भाषा वह माध्यम है, जो एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से संबंध स्थापित कराती है। अगर मानव के पास भाषा जैसा अस्त्र न होता तो वह भी अन्य पशु-पक्षियों के समान अपने भावों, विचारों को अभिव्यक्त करने में असमर्थ होता। विश्व के प्रत्येक देश में कोई-न-कोई भाषा बोली जाती है। भाषा मानव शरीर में एक ऐसा दैवी अंश है, जो केवल मनुष्य को ही प्राप्त है। भाषा ने ही समस्त संसार में अपना प्रकाश फैलाया हुआ है। वह एक ज्योति है। इस भाषा नामक ज्योति के अभाव में सारा संसार घोर अंधकार में होता। भाषा रूपी दैवी अंश के कारण ही मनुष्य इस संसार में उत्तम जीव माना जाता है। आज मानव ने भाषा की वजह से ही ज्ञान-विज्ञान के सभी क्षेत्रों में अपना प्रभुत्व स्थापित किया है। मानव केवल और केवल भाषा के कारण ही चर और अचर जगत का स्वामी बनकर बैठा है। सर्व प्रथम वैदिक ऋषियों ने ऋग्वेद में वाग सूक्त के आठ मंत्रों में इस विषय की ओर ध्यान आकृष्ट किया कि, वाक्तत्व या भाषा ही वह दिव्य-ज्योति है जो मनुष्य को ऋषि, देवता या विद्वान बनाती है।

भाषा शब्द संस्कृत भाषा के 'भाष्' धातु से बना है। इसका अर्थ है बोलना मतलब भाषा वह है जिससे बोला जाए। व्यावहारिक दृष्टि से भाषा बहुत ही उपयोगी है। भाषा की उपयोगिता को देखकर भाषा-विषयक अनेक जिज्ञासाएँ मनुष्य के मन में व्युत्पन्न होती हैं। उदा. भाषा क्या है, भाषा की व्युत्पत्ति किस प्रकार हुई ? भाषा कैसे बनती है? भाषा का प्रयोग किस प्रकार किया जाता है ? भाषा के अवयव कौनसे है ? उन अवयवों की उच्चारण विधी क्या है ? विश्व की भाषाओं का परस्पर संबंध क्या है ? उक्त सभी जिज्ञासाओंका समाधान करने के लिए अनेक शताब्दियों से प्रयास हो रहा है। इसी वजह से आज भाषा विज्ञान एक विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित हो सका है। लगभग २५० वर्षो से पाश्चात्य देशों में भी इस विषय पर अनेक गंभीर चिंतन और मनन होता आ रहा है।

सर विलियम जोन्स ने १७८६ में संस्कृत भाषा का संपूर्ण अध्ययन किया। इस अध्ययन से उन्होंने पाया कि संस्कृत, ग्रीक तथा लैटिन भाषाओंमें बहुत सारी संभावनाएँ निहित हैं। इसी कारण उन्होंने तुलनात्मक अध्ययन पर अधिक बल दिया। इस प्रकार संस्कृत भाषा तुलनात्मक भाषा की मूल बनी। विलियम जोन्स द्वारा डाली गई नींव आज विकसित होकर तथा पल्लवित होकर भाषाविज्ञान के रूप में प्रसिद्ध है।

भाषाविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो भाषा संबंधी सभी प्रश्नों तथा समस्याओं का समाधान तलाशता है। भाषाविज्ञान का संबंध केवल हिन्दी भाषा से न होकर विश्व की समस्त भाषाओंसे है। भाषाविज्ञान ही एक ऐसा विज्ञान है जो विश्व की सभी भाषाओं का सामूहिक एवं तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। भाषाविज्ञान ही व्याकरण, रुप, पद-निर्माण,

वाक्य प्रयोग की शिक्षा देता है। भाषाविज्ञान व्याकरण का व्याकरण होने के कारण ध्वनि परिवर्तन आदि सभी दिशाओं में काम करता है। भाषा विज्ञान भाषा के उच्चारण, प्रयोग तथा उपयोग की सुव्यवस्थित शिक्षा प्रदान करता है। भाषाविज्ञान भाषा के सभी अंगो के विवेचन के साथ-साथ उसे जीवन उपयोगी भी बनाता है। भाषाविज्ञान विश्व भाषा शिक्षण में अत्यंत ही मददगार है।

२.६ सारांश

प्रस्तुत इकाई में विद्यार्थियों ने भाषा विज्ञान का नामकरण, उसकी परिभाषा और भाषा विज्ञान का स्वरूप और व्याप्ति आदि का अध्ययन किया। भाषा की उपयोगिता को देखकर भाषा विषयक अनेक जिज्ञासाएँ विद्यार्थियों के मन में उत्पन्न होती है। इन सभी मुद्दों को इस इकाई के माध्यम से समझ सके।

२.७ लघुत्तरीय प्रश्न

१) 'भाषा विज्ञान' शब्द किस विद्वान की देन है ?

२) "भाषा विज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा का सर्वांगीण विवेचनात्मक अध्ययन किया जाता है" यह परिभाषा किसकी है ?

३) सर विलियम जोन्स ने कौनसी भाषा का सम्पूर्ण अध्ययन किया ?

४) भाषा विज्ञान को 'ग्लासोलोजी' यह नाम किसने दिया ?

२.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) भाषा विज्ञान की परिभाषा स्पष्ट करते हुए भाषा विज्ञान के नामकरण की चर्चा कीजिए।

२) भाषा विज्ञान के स्वरूप और व्याप्ति पर प्रकाश डालिए।

२.९ संदर्भ ग्रंथ

१) भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी

२) भाषा विज्ञान - डॉ. भोलानाथ तिवारी

३) हिंदी भाषा का उद्भव और विकास - डॉ. उदयनारायण तिवारी

❖❖❖❖

३

भाषा विज्ञान का अध्ययन एवं प्रकार

इकाई की रूपरेखा :

३.१ इकाई का उद्देश्य

३.२ प्रस्तावना

३.३ भाषा विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र

३.४ भाषा विज्ञान - अध्ययन की दिशाएँ

३.५ भाषा विज्ञान के प्रकार

३.५.१ अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान

३.५.२ व्यतिरेकी भाषा विज्ञान

३.६ सारांश

३.७ लघुत्तरीय प्रश्न

३.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न

३.९ संदर्भ ग्रंथ

३.१ इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से पाठकों का परिचय होगा।

i) भाषा विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र से परिचय होगा।

ii) भाषा विज्ञान के अध्ययन की दिशाओंपर विवेचनात्मक जानकारी प्रस्तुत करना।

iii) भाषा विज्ञान के प्रकारों से अवगत करना।

३.२ प्रस्तावना

अन्य विज्ञानों की तुलना में भाषा-विज्ञान का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। (Gune) गुणे का कथन है कि भाषा-विज्ञान का क्षेत्र उतना ही व्यापक है, जितनी की सारी मानवता। इसका कारण यह है कि स्वयं मानव का सम्बन्ध भाषा के साथ है। भाषा-विज्ञान का सम्बन्ध मानव मात्र की भाषा से है। विश्व की समस्त भाषाएं भाषा विज्ञान के क्षेत्र में आती हैं। (Gray) ग्रे का विचार है कि भाषा-विज्ञान भाषा की वैज्ञानिक खोज और इतिहास से सम्बन्ध रखना है। वह किसी ऐसे तथ्य का अध्ययन है जो समस्त मानवता में व्याप्त हो या किसी दिए हुए भाषा-परिवार के मध्य अक्षरो एंव सभांवनाओं का परिक्षण हो या किसी पृथक भाषा की खोज हो और चाहे एक या अधिक बोलियों का अध्ययन।

३.३ भाषाविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र

भाषा-विज्ञान में समस्त भाषाओं का विवेचनात्मक अध्ययन, विश्लेषण, उनकी उत्पति और विकास तथा उनकी परस्पर तुलना आदि भाषाविज्ञान के अंतर्गत आते हैं। भाषा विज्ञान के क्षेत्र में केवल साहित्यिक भाषाओं का ही अध्ययन नहीं होता। अपितु असभ्य, अर्धसभ्य एवं ग्रामीण लोगों की बोलियों का भी विशेष सावधानी के साथ अध्ययन किया जाता है। यहाँ यह समझ लेना उचित है कि भाषाशास्त्री के साहित्यिक भाषा की अपेक्षा बोलचाल और ग्रामीण बोलियाँ अधिक महत्व की होती है। इसका कारण यह है कि उसमे भाषा की प्रवृत्ति के मौलिक तत्वों का ठीक निष्कर्ष निकालना संभव होता है। भाषा विज्ञान वर्तमान और अतीत दोनों प्रकार की भाषा का अध्ययन करता है। वह त्रैकालिक तथ्यों का अनूसंधान करता है और उनका प्रकाशन करता है। मानव की प्रकृति का जितना सुक्ष्म अध्ययन भाषाविज्ञान प्रस्तुत करता है, उतना अन्य विज्ञान नहीं। भाषा विज्ञान एक और व्याकरण का काम करता है तो दूसरी और उसके दार्शनिक पक्ष को स्पष्ट करता है। इस दार्शनिक पक्ष की व्याख्या में उसे अन्य-अनेक विज्ञानों का सहयोग लेना पडता है। इस प्रकार भाषाविज्ञान का क्षेत्र केवल व्याकरण और दर्शन तक ही सीमित न रहकर विज्ञान और शास्त्रों में अनेक अंशों तक व्याप्त है। भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में उसके सभी अंग सम्मिलित है। भाषा विज्ञान के क्षेत्र को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

३.३.१ मुख्य वर्ग

३.३.२ गौण वर्ग

३.३.१ मुख्य वर्ग :

भाषा विज्ञान भाषा का सर्वांगिण अध्ययन प्रस्तुत करता है, अत: उसमें भाषा के सभी घटकों का अध्ययन होता है। भाषा शब्द के द्वारा उसके मुख्य चार घटकों का बोध होता है।

१) ध्वनि (sound) ध्वनि-विज्ञान (phonetics)

२) पद या शब्द (form) पद - विज्ञान, रूप विज्ञान (Morphology)

३) वाक्य (sentence) वाक्य विज्ञान (syntax)

४) अर्थ (meaning) अर्थ विज्ञान (semantics)

भाषा की सबसे छोटी इकाई ध्वनि है। ध्वनि का ही सर्वप्रथम उच्चारण होता है। अनेक ध्वनियों से मिलकर पद या शब्द बनता है। अनेक पदों से वाक्य की रचना होती है। और वाक्यों से सम्पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। यह क्रम निरंतर चलता रहता है। इनमें से प्रत्येक अंग का विशेष अध्ययन किया जाता है।

१) ध्वनि विज्ञान -

शब्द का मुख्य आधार ध्वनि है। ध्वनि-विज्ञान में भाषा के मूल तत्व ध्वनि का व्यापक अध्ययन किया जाता है। इसमें मुख्य रुप से इन विषयों का संकलन होता है - ध्वनि क्या है? ध्वनियाँ कितनी है ? इनका वर्गीकरण किस प्रकार किया जाता है ? ध्वनियाँ कैसे और

कहाँ से व्युत्पन्न होती हैं ? ध्वनियों का संप्रेषण किस प्रकार का होता है ? ध्वनि भेद के क्या कारण है ? ध्वनि संयोग से क्या परिवर्तन होते हैं ? ध्वनियों में तीव्रता और मंदता क्यों आती है ? ध्वनिविज्ञान के अंतर्गत किसी भाषा में प्रयुक्त ध्वनियों का वर्णन और विवेचन आता है। ध्वनि-परिवर्तन के कारणों के साथ-साथ परिवर्तन की दिशाएँ भी विचित्र तथा अद्भूत है, जिनमें कहीं ध्वनियों का आगम होता है तो कही लोप। ध्वनि-नियमों का आकलन ध्वनि-विज्ञान का ही विषय है। ध्वनि-नियम प्राकृतिक नियमों की भाँति अचल एवं स्थिर नहीं होते। इनका प्रचलन भाषिकी और क्षेत्रीयता की दृष्टि से अधिक प्रसिद्ध है। इन ध्वनि नियमों में कुछ नियम विख्यात हैं - ग्रिम नियम, ग्रास नियम, बर्नर का नियम आदि। इस प्रकार भाषा के संदर्भ में ध्वनि का सम्पूर्ण विवेचन इसके अंतर्गत किया जाता है।

२) पद या रूप विज्ञान -

अनेक ध्वनियों के संयोग से शब्द का निर्माण होता है। जब कोई शब्द वाक्य में प्रस्तुत होने की क्षमता धारण कर लेता है तब वह पद बन जाता है। पद-विज्ञान को रूप-विज्ञान, रूप विचार तथा पद-विचार भी कहा जा सकता है। रूप-विज्ञान के अंतर्गत शब्द और पद का निर्माण कैसे होता है। पद के घटक अवयव क्या है ? शब्द और पद में क्या भेद है ? उपसर्ग, प्रकृति एवं प्रत्यय का योग कैसा और कितना है ? पदों का विभाजन किस आधार पर होता है ? पद-निर्माण कितने प्रकार का होता है ? पद परिवर्तन क्यों होता है ? इसका मुख्य कारण क्या है ? परिवर्तन की दिशाएँ कौन-कौन सी है ? इत्यादि विषयों का पद-विज्ञान में विवेचन किया जाता है।

३) वाक्य विज्ञान -

जिस प्रकार विभिन्न ध्वनियों के समन्वय से पद या रूप बनता है। उसी प्रकार विभिन्न पदों या रूपों के समन्वय से वाक्य बनता है। भाषा का मुख्य काम विचार-विनिमय है। विचार-विनिमय वाक्यों के द्वारा ही संभव है। अत: वाक्य ही भाषा का सबसे अधिक स्वाभाविक और महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। वाक्य विज्ञान में वाक्य की रचना किस प्रकार होती है ? वाक्य में पदों का अन्वय किस प्रकार होता है ? अन्वय का आधार क्या है ? कर्ता, कर्म, क्रिया आदि का किस स्थान पर, निवेश होता है ? वाक्य के कितने भेद हैं। इत्यादि बातों का विवेचन किया जाता है। वाक्य विज्ञान को तीन भागों में विभाजित किया जाता है।

१) वर्णनात्मक वाक्य - विज्ञान

२) ऐतिहासिक वाक्य - विज्ञान

३) तुलनात्मक वाक्य - विज्ञान

वर्णनात्मक वाक्य-विज्ञान में वाक्य की रचना का सामान्य विवरण प्रस्तुत किया जाता है। ऐतिहासिक वाक्य विज्ञान में वाक्य की रचना का इतिहास दिया जाता है और तुलनात्मक, वाक्य - विज्ञान में दो या अनेक भाषाओं के वाक्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।

४) अर्थ विज्ञान -

जिस प्रकार मानव शरीर का सार आत्मा है, उसी प्रकार भाषारूपी शरीर की आत्मा अर्थ है। ऐतिहासिक धरातल पर अर्थ - विज्ञान के विवेच्य को भी समझा जा सकता है। अर्थ-विज्ञान में बौद्धिक नियमों का अनुशीलन किया जाता है, जिसमें अर्थ, विकास, अर्थ भेद तथा अर्थ परिवर्तन की दिशाओं का पता चलता है। अर्थ - विज्ञान के अंतर्गत अर्थ क्या है ? शब्द और अर्थ का सम्बन्ध क्या है ? अर्थ परिवर्तन की कौन-कौन से कारण है इत्यादि समस्याओं का समाधान किया जाता है। अर्थ का अध्ययन भी वर्णनात्मक, तुलनात्मक और ऐतिहासिक तीनों रूपों में हो सकता है। इसमे पर्यायवाची शब्द, नानार्थक शब्द, विलोमार्थक शब्द आदि का भी विवेचन किया जाता है।

३.३.२ गौण वर्ग -

उपरोक्त भाषाविज्ञान के प्रमुख चार अंगों के अतिरिक्त कतिपय अन्य अंगों का भी विवेचन किया जाता है। इन्हें गौण अंग माना जाता है। वे इस प्रकार है :

भाषा की उत्पति -

इसमें भाषा की उत्पति कैसे हुई। इस विषय पर भाषा - शास्त्रियों का क्या मत है ? भाषा का विकास कैसे हुआ ? आदि पर विचार किया जाता है।

भाषाओं का वर्गीकरण -

इसके अंतर्गत भाषाओं का तुलनात्मक और ऐतिहासिक अध्ययन कर उनका वर्गीकरण किया जाता है। इस आधार पर यह भी निश्चित किया जाता है कि कौन-कौन सी भाषाएँ एक परिवार की है।

कोश-विज्ञान -

कुछ विद्वान इसे व्युत्पत्तिशास्त्र भी कहते हैं। व्युत्पतिशास्त्र के लिए संस्कृत का 'निरुक्त' शब्द प्रचलित है। कोश-विज्ञान में भाषा के समस्त अर्थवान तत्वों को वर्णानुक्रम से सुचीबद्ध किया जाता है। इसके अंतर्गत शब्दों की व्युत्पति क्या है। शब्दों का अर्थ कैसे निर्धारित किया जाता है। प्रत्येक शब्द का किन अर्थो में प्रयोग होता है। एकार्थक, अनेकार्थक, विषमार्थक शब्दों की व्याख्या आदि का विवेचन होता है। शब्द के पूरे जीवन तथा उसके आंतरिक और बाह्य परिवर्तनों पर विचार किया जाता है।

लिपि - विज्ञान -

इसमें लिपि की व्युत्पति विकास और उसकी उपयोगिता आदि पर विचार किया जाता है। लिपि के आधार पर ही किसी भाषा का अध्ययन किया जाता है। अत: इसे भी भाषा विज्ञान का अंग माना जाता है।

भाषिक भूगोल -

इसके अंतर्गन्त भाषा का भौगोलिक दृष्टि से अध्ययन किया जाता है। विश्व के किन-किन भागों में कौनसी भाषाएँ बोली जाती है ? किस भाषा का कितना व्यापक क्षेत्र है ? उसकी कितनी बोलियाँ हैं ? उनकी निश्चित सीमाएँ क्या हैं ? सीमान्तों की भाषाएँ कैसे परस्पर प्रभावित होती है। इस पद्धति पर अनेक निष्कर्ष भी प्रस्तुत किए जा चुके हैं।

प्रागैतिहासिक खोज -

इसमें भाषा-विज्ञान के आधार पर प्रागैतिहासिक काल की सभ्यता और संस्कृति का अध्ययन किया जाता है। भाषा - विज्ञान ही एक मात्र ऐसा साधन है, जिसके द्वारा प्राचीन संस्कृतियों का यथार्थ ज्ञान हो सकता है। यह शाखा अभी तक शैशवावस्था में है।

शैली - विज्ञान -

भाषा विज्ञान की यह नवीन पर महत्वपूर्ण शाखा हैं। इसमें किसी भाषा के लेखक या कवि भाषा के किन शब्दों को मुख्य रूप से अपनाते हैं, उनकी शैली की क्या विशेषताएँ हैं ? आदि बातों का अध्ययन किया जाता है। व्यक्तिगत अंतर एवं शैली सम्बन्धी अंतर का अध्ययन शैली विज्ञान का विषय है।

भू-भाषा-विज्ञान -

इसके अंतर्गत विश्व की भाषाओं का विभाजन तथा उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और आर्थिक प्रभाव का संग्रह किया जाता है। साथ ही विभिन्न देशों की संस्कृति किस प्रकार भाषा को प्रभावित करती हैं, इसका वर्णन किया जाता है।

समाज - भाषा विज्ञान -

इसमें भाषा और समाज का सम्बन्ध तथा समाज के विभिन्न स्तरों पर प्रयुक्त भाषा की ध्वनि, रूप, वाक्य और अर्थ आदि की विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है।

३.४ भाषा-विज्ञान-अध्ययन की दिशाएँ

भाषाविज्ञान की अध्ययन पद्धतियों के संदर्भ में भाषाविज्ञान शब्द से जो प्रत्यय मस्तिष्क से उत्पन्न होता है, पहले उसका अध्ययन कर लेना आवश्यक हो जाता है। वैसे भाषाविज्ञान का सीधा अर्थ है जो भाषा का विज्ञान है वह भाषा विज्ञान है। परंतु इस अर्थ से यह ज्ञात नहीं होता हैं कि भाषा का अध्ययन विश्लेषण भाषाविज्ञान द्वारा किन-किन रूपों में किया जाता है। जैसे काव्यशास्त्र शब्द से इतना ही ज्ञात होता है कि इसमें काव्य का अध्ययन विश्लेषण होता है। यह शब्द रस, ध्वनि, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति आदि संप्रदायों का बोध नहीं कराता। जिस प्रकार इन सभी सिद्धांतों का सामुहिक नाम काव्यशास्त्र है उसी प्रकार भाषाविज्ञान शब्द भी भाषा का अध्ययन करने की कुछ विशिष्ट पद्धतियों का सामूहिक नाम है। भाषा वैज्ञानिकों द्वारा भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन, विश्लेषण की कई पद्धतियाँ अपनाई गई हैं। इनके आधार पर भाषाविज्ञान में पाँच अध्ययन पद्धतियाँ प्रख्यात है।

अ) वर्णनात्मक भाषाविज्ञान पद्धति

आ) ऐतिहासिक भाषाविज्ञान पद्धति

इ) तुलनात्मक भाषाविज्ञान पद्धति

ई) संरचनात्मक भाषाविज्ञान पद्धति

उ) प्रायोगिक भाषाविज्ञान पद्धति

अ) वर्णनात्मक भाषाविज्ञान पद्धति :

इसके अंतर्गत किसी एक भाषा का किसी काल विशेष से सम्बद्ध स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है। इसमें भाषा के उस काल का स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है। इसमें भाषा के उस काल के स्वरूप का विवेचन और विश्लेषण किया जाता है। यह भाषा वर्तमान काल की हो सकती है। यदि उस भाषा का प्राचीन साहित्य उपलब्ध है तो वह भूतकाल की हो सकती है। जैसे- संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, अँग्रेजी आदि भाषाओं का प्राचीन साहित्य उपलब्ध है। इन भाषाओं का वर्णनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया जा सकता है। भाषा के संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, प्रत्यय, विभक्ति आदि रूपों का वर्णनात्मक सम्यक अनुशीलन इस पद्धति की विशेषता हैं। आजकल भाषाविज्ञान के ध्वनि, वाक्य, अर्थ तथा रूप को इस प्रवृत्ति के द्वारा रुपायित करने में सुबोधता प्राप्त होती है। इस प्रवृत्ति के लिए वस्तुपरक दृष्टिकोण का होना अनिवार्य है। वर्णनात्मक भाषाविज्ञान का सम्बन्ध उसके विद्यमान स्वरुप से है। इसमें भाषा का विकास या तुलनात्मक अध्ययन विचार का विषय नहीं है। अत: इसे स्थित रूपात्मक कहा जाता है। जैसे संस्कृत व्याकरण या पाणिनी व्याकरण का स्थित रूपात्मक कहा जाएगा। पाणिनी ने संस्कृत भाषा का जो विश्लेषणात्मक स्वरूप उपस्थित किया है, उसकी पाश्चात्य विद्वानों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। पाश्चात्य विद्वानों ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि वर्णनात्मक भाषाविज्ञान का इससे अधिक सुंदर उदाहरण नहीं मिल सकता। पाश्चात्य जगत में इस प्रवृति का स्वरुप प्रभाव सृष्टि के कारण अधिक व्याप्त है।

वर्णनात्मक भाषाविज्ञान सामान्य भाषाविज्ञान का प्रमुख अंग माना जाता है। इसको आधार मानकर ही ऐतिहासिक और तुलनात्मक भाषाविज्ञान आगे बढते हैं। आज यह भाषाविज्ञान के एक स्वतंत्र अंग के रूप में विकसित हो रहा है। इस पद्धति को मानने वाले भाषा के केवल उच्चरित रूप का ही अध्ययन आवश्यक समझते हैं। वे ध्वनि, पद और वाक्य तक ही इसकी सीमा निर्धारित करना चाहते है। इनके मतानुसार वर्णनात्मक भाषाविज्ञान में अर्थविज्ञान का स्थान नहीं है। यह विचार अत्यंत आपत्तिजनक और उपेक्षणीय है। ध्वनि, पद और वाक्य भाषा के शरीर है और अर्थ आत्मा। अर्थरूपी आत्मा के बिना शरीर किस काम का। अर्थ की उपेक्षा करने पर वर्णनात्मक भाषाविज्ञान निर्जीव शरीर के चीरफाड के समान चिरसार हो जाएगा। वर्णनात्मक विवेचन भाषा विज्ञान के सभी अंगों के विवेचन के लिए रूपात्मक है। उसमें प्राचीन साहित्य से लेकर आधुनिक युग तक के साहित्य को विश्लेषणात्मक स्वरूप प्रदान किया जा सकता है।

आ) ऐतिहासिक भाषाविज्ञान पद्धति -

इस पद्धति का मुख्य उद्देश्य भाषा विशेष का काल सापेक्ष क्रमागत परंपरा में इतिवृत्तात्मक अनुशीलन करना है। इसमें भाषा के क्रमिक विकास का इतिहास प्रस्तुत किया जाता है। भाषा परिवर्तनशील है। वह सदैव एक सी नहीं रहती। भाषा परिवर्तन को ही भाषायी विकास कहा जाता है। भाषा का आदि रूप क्या था ? इसमें कम-से-कम दो कालो का क्रमिक विकास दिखाना आवश्यक है। उदाहरणार्थ वैदिक संस्कृत से लेकर पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि के रूप में परिवर्तित होते हुए वर्तमान हिंदी आदि भाषाओं का क्रमिक विकास ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का विषय होगा। ध्वनि, पद और वाक्यों में क्रमश: किस प्रकार का विकार आया ? किस युग में उसका क्या स्वरूप था ? और उसका वर्तमान विकसित रूप क्या हुआ ? इनकी जानकारी ऐतिहासिक भाषाविज्ञान देता है। ऐतिहासिक अनुसंधान परक यह पद्धति गत्यात्मक प्रणाली के नाम से भी जानी जा सकती है।

ऐतिहासिक भाषा विज्ञान का उद्भव यूरोप में हुआ। आश्चर्य की बात यह है कि युरोपवासी भाषाविज्ञानी संस्कृत के ज्ञान से इस दिशा की ओर अग्रसर हुए। ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं के विशिष्ट संदर्भ में वे इस कार्य में प्रवृत्त हुए और उन्होंने देखा कि युरोप और अन्य अनेक भाषाओं का संस्कृत से सीधा सम्बन्ध है। इक्कीसवी शताब्दी का काल ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का स्वर्णयुग है। यह वह युग था जिसमें भाषाविज्ञान के अध्ययन के लिए संस्कृत का ज्ञान अनिवार्य माना जाता था। भाषाविज्ञान में समकालिक और कालक्रमिक इन दो पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग प्रचलित है। समकालिक भाषाविज्ञान में उस काल विशेष में प्रचलित भाषा के रूपों का अध्ययन किया जाता है। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान कालक्रमिक है। इसमें कालों के रूपो का अध्ययन किया जाता है।

इ) तुलनात्मक भाषाविज्ञान पद्धति -

इस पद्धति के अंतर्गत दो या दो से अधिक भाषाओं का सर्वांगपूर्ण गूढ़ तरीके से काल सापेक्ष तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। यह अध्ययन किसी एक काल विशेष या अनेक कालों के आधार पर किया जाता है। समकालिक और ऐतिहासिक भाषा सामग्री के आधार पर इसे प्रस्तुत किया जा सकता है। इस अध्ययन के आधार पर ही भाषाओं के बीच पारिवारिक सम्बन्ध दिखाया जाता हैं। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान तुलनात्मक भाषाविज्ञान की तुलना के बिना पंगु है। वास्तव में आधुनिक भाषाविज्ञान का जन्म ही तुलनात्मक भाषावैज्ञानिक अध्ययन से हुआ है। यह इसके प्रभाव का ही परिणाम है कि अब से कुछ समय पूर्व तक भाषाविज्ञान को तुलनात्मक भाषाविज्ञान कहा जाता था।

तुलनात्मक पद्धति भाषाविज्ञान की एक अभिनव प्रक्रिया है। संस्कृत लैटिन और ग्रीक आदि पुरानी भाषाओं की तुलना का श्रेय भी आधुनिक भाषाविज्ञान को जाता है। १८ वी शताब्दी में जर्मनी के प्रसिद्ध 'ग्रिम' ने ध्वनिपरक तुलनात्मक संश्लेषण संस्कृत, ग्रीक और लैटिन भाषाओं से जर्मनी की भाषाओं में देखा। फलत: ग्रिम नियम के नाम से आज ध्वनि नियम भाषा विज्ञान के लिए प्रख्यात बना हुआ है। तुलनात्मक भाषा विज्ञान से विश्व-संस्कृति की उत्सव-धर्मिता का भी परिचय मिलता है। भाषा के प्राचीन और बदलते हुए कीर्तिमान तथ्य तुलनात्मक दृष्टि से समाहित किया जा सकता है। १९ वीं शताब्दी का काल तुलनात्मक भाषाविज्ञान का स्वर्णयुग है। इस युग में रास्क, ग्रिम, बाघ, श्लाइखर, डेलब्रुक था अंतोने मेई

ने इस पद्धति के आधार पर अनेक मौलिक अविष्कार किए । वैसे तो तुलनात्मक पध्दति के संकेत कुर्दो और विलियम्स जोन्स ने अठारहवी शताब्दी में ही कर दिए थे । कुछ भी हो; युरोप में तुलनात्मक भाषाविज्ञान के आधार पर जो अध्ययन किया गया उसके मूल में संस्कृत भाषा थी। मैक्समूलर ने कहा भी है - "तुलनात्मक भाषाविज्ञान की एकमात्र दृढ़ आधारशिला संस्कृत है।" संस्कृत के ज्ञान के बिना तुलनात्मक भाषाविज्ञान वैसा ही है जैसा गणित के ज्ञान के अभाव में ज्योतिषी । तुलनात्मक पद्धति का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसके द्वारा भाषा परिवर्तन के काल का निश्चित निर्णय नहीं किया जा सकता । इसी कारण तुलनात्मक भाषाविज्ञान, ऐतिहासिक भाषाविज्ञान से सहायता माँगता है ।

यह पद्धति धीरे-धीरे उभर रही है। इसे कुछ विद्वान व्यावहारिक भाषाविज्ञान भी कहते हैं । भाषाविज्ञान की सैद्धान्तिक उपलब्धियों का विवेचन उपयुक्त चार पद्धतियों में किया जा सकता है । वस्तुत: भाषा का प्रयोग पक्ष सिद्धान्त पक्ष से अधिक सबल है । इस पक्ष को समझने के लिए भाषा-विज्ञान की प्रयोगात्मक पद्धति की नींव डाली गई है । इस पद्धति में भाषा विद् किसी भाषा के क्षेत्र में जाकर उसके बोलने वालो से निकट सम्पर्क स्थापित करते हुए भाषा का व्यावहारिक अध्ययन करता है । प्रयोगात्मक पद्धति से आज के विज्ञान युग में विस्तार आया है । जैसे-जैसे क्षेत्रीयता की आवाज परिधि में गूँजने लगी है, वैसे-वैसे भाषाविज्ञान में प्रयोग प्रेरक उच्चस्तरीय परिमापन की माँग बढ़ गई है । सारे विश्व में विस्तीर्ण भाषायी आदान-प्रदान प्रयोगात्मक पक्ष का एक उभरा हुआ रुप है । प्रयोगात्मक मशीनरी तकनीकि से अधिक सम्बद्ध है । इसलिए टेलिप्रिन्टर, कायमोग्राफ तथा कम्प्युटर जैसे यांत्रिक साधनों का आविष्कार प्रयोगात्मक पद्धति को बल देता है ।

आज समूचे भारत में हिंदी का राष्ट्रव्यापी रूप विशेष तौर पर बल पकड़ता जा रहा हैं । परिणाम स्वरूप हिंदी अनुवाद तथा पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण नाना रूपों में नाना विषयों के साथ अपेक्षित हो गया है । एक ओर जन-जीवन की भाषा का स्वरूप भाषा के सिद्धान्त पक्ष को अभिनव मार्ग प्रशस्त करने में सक्षम हैं तो दूसरी और भाषा की विविध शैलियों को प्रयोगपरक बनाने में यह पद्धति सफल हुई है ।

ई) प्रायोगिक भाषाविज्ञान पद्धति -

यह पद्धति धीरे-धीरे उभर रही है | इसे कुछ विद्वान व्यावहारिक भाषाविज्ञान भी कहते हैं | भाषाविज्ञान की सैद्धांतिक उपलब्धियों का विवेचन उपयुक्त चार पद्धतियों में किया जा सकता हैं | वस्तुत: भाषा का प्रयोग पक्ष सिद्धान्त पक्ष से अधिक सबल हैं | इस पक्ष को समझने के लिए भाषा-विज्ञान की प्रयोगात्मक पद्धति की नींव डाली गई हैं | इस पद्धति में भाषा विद् किसी भाषा के क्षेत्र में जाकर उसके बोलने वालो से निकट सम्पर्क स्थापित करते हुए भाषा का व्यावहारिक अध्ययन करता हैं | प्रयोगात्मक पद्धति से आज के विज्ञान युग में विस्तार आया हैं | जैसे-जैसे क्षेत्रीयता की आवाज परिधि गूंजने लगी हैं, वैसे - वैसे भाषाविज्ञान में प्रयोग प्रेरक उच्चस्तरीय परिमापन की माँग बढ़ गई हैं | सारे विश्व में विस्तीर्ण भाषायी आदान-प्रदान प्रयोगात्मक पक्ष का एक उभरा हुआ रूप हैं | प्रयोगात्मक मशीनरी तकनीक से अधिक सम्बन्ध हैं | इसलिए टेलिप्रिन्टर, कायमोग्राफ तथा कम्प्यूटर जैसे साधनों का आविष्कार प्रयोगात्मक पद्धति को बल देता हैं |

आज समूचे भारत में हिंदी का राष्ट्रव्यापी रूप विशेष तौर पर बल पकड़ता जा रहा हैं | परिणाम स्वरूप हिंदी अनुवाद तथा पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण नाना रूपों में नाना विषयों के साथ अपेक्षित हो गया हैं | एक ओर जन-जीवन की भाषा का स्वरूप भाषा के सिद्धान्त पक्ष को अभिनव मार्ग प्रशस्त करने में सक्षम हैं तो दूसरी और भाषा की विविध शैलियों को प्रयोगपरक बनाने में यह पद्धति सफल हुई हैं |

उ) संरचनात्मक भाषाविज्ञान पद्धति

भाषा तत्वों की व्याख्या से संरचनात्मक प्रक्रिया भाषाविज्ञान में महत्वपूर्ण सारणी है । भाषात्मक तत्व संरचनात्मक पद्धति से विश्लेषित किए जाते है । भाषिक संरचना में ध्वनि रूप वाक्य का विशिष्ट स्थान है । ध्वनि तथा वाक्य भाषाविज्ञान का महत्वपूर्ण संरचनात्मक पक्ष है । इस पक्ष को रचनात्मक तत्वों की सापेक्षता में परखना या विवेचित करना इस पद्धति का लक्ष्य है । रचनांतर्गत भाषा के विभिन्न स्तरों तथा प्रभावों का अध्ययन अनिवार्य हो जाता है । युग परिवेश के अनुसार भाषातत्व किन किन आधारों पर किन-किन रूपों में विकसित होते हैं आदि का क्रमिक किन्तु वर्णनात्मक अध्ययन संरचनात्मक पद्धति है । रचना के अंतर्भूत तत्वों को क्रममूलक तथा स्थितिमूलक आधारों पर नियोजित करना भी इस पद्धति का उद्देश्य है ।

भाषाविज्ञान भाषा की वैज्ञानिक दृष्टि है। उस दृष्टि का सम्यक आकलन करना तथा रचना के सूक्ष्म अवयवों को अनुभव करना संरचनात्मक पद्धति का अंग है । भाषा संरचनात्मक पहलू है । इस पहलू का विस्तार सहज और सुबोध होता है । भाषा नैसर्गिक तरीके से विकसित होती है । विकास की उस दिशा का प्रतिपादन तथा अनुशीलन संरचानत्मक पद्धति का अभिष्ट बन जाता है । रूपविज्ञान के अंतर्गत शब्द विज्ञान और पदविज्ञान दोनों की अभिक्रियाओं का अध्ययन-मनन-भाषा विस्तार के लिए संरचनात्मक ही है । भाषा का सम्यक रूप से रचनात्मक पक्ष उभरकर प्रस्तुत कर देना ही संरचानत्मक पक्ष की अर्थकता है । भाषा जाने अनजाने अभिव्यंजन में नैसर्गिक गति प्रवाहमान है । इस प्रवाह की गति को भाषा का परिमार्जन कर लेना संरचनात्मक यौगिक क्रिया का ही प्रतिफलन है । भाषा रूप की भाँति अर्थ व्यंजना भी विलक्षण है । अर्थविज्ञान के अपकर्ष, उत्कर्ष को अर्धादेश के साथ संकोच और विस्तार को तादात्मय कर लेना भी भाषाविज्ञान और विशेषकर संरचनात्मक पद्धति का महत्वपूर्ण पहलू है ।

३.५ भाषा विज्ञान के प्रकार

३.५.१ अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान (Applied) :

आधुनिक भाषाविज्ञान में भाषा के अनुप्रायोगिक पक्ष पर भी चिंतन हुआ है । इस प्रकार अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान वह शाखा है - जिसका मुख्य लक्ष्य भाषा वैज्ञानिक सिद्धांतो तथा प्रणाली के अनुप्रयोग से उन भाषायी समस्याओं का पता लगाना और उनका समाधान ढूँढ़ना है जिनका संबंध भाषा के इतर विषय क्षेत्रों के अनुभव से है । भाषाविज्ञान या उसके सिद्धांतों एवं प्रणालीयों का प्रयोग अन्य विषयों अर्थात मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, दर्शन आदि कार्य क्षेत्रों में किया जाने लगा है । ऐसे सभी प्रयोगों को सामान्यत: अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की संज्ञा दी गई है ।

इस प्रकार भाषा का सैद्धांतिक विश्लेषण और वाक्य, रूपिम, स्वनिम आदि उसके व्याकरणिक स्तरों का वैज्ञानिक अध्ययन भाषाविज्ञान का सिद्धांत कहलाता है, जबकि सैद्धांतिक भाषाविज्ञान के नियमों, सिद्धान्तों, तथ्यों और निष्कर्षो का किसी अन्य विषय में अनुप्रयोग करने की प्रक्रिया और क्रिया - कलाप का विज्ञान ही अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान है।

"अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञानी अपने ज्ञान भंडार के विवेचनात्मक परीक्षण के पश्चात उसका अनुप्रयोग उन क्षेत्रों में करता हैं, जहाँ मानव भाषा एक केन्द्रीय घटक होती है और उससे उन क्षेत्रों की कार्यक्षमता का संवर्धन किया जा सकता है।"

व्यवहार और प्रयोग की दृष्टि से इसके दो संदर्भ है।

१) व्यापक

२) सीमित

१) व्यापक :

व्यापक संदर्भ में इसके विषय क्षेत्र की सीमा के अंतर्गत शैली विज्ञान, कोशविज्ञान, भाषा नियोजन, वाक-चिकित्सा विज्ञान आदि विषयों का अध्ययन होता है।

२) सीमित :

सीमित संदर्भ अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान के विषय क्षेत्र का भाषाशिक्षण तक सीमित है।

भाषा वैज्ञानिक सिद्धांतो के अनुप्रयोग को तीन संदर्भो में निर्धारित किया जा सकता है -

१) ज्ञान क्षेत्र का संदर्भ

२) विधा-विशेष का संदर्भ और

३) भाषा शिक्षण का संदर्भ

१) ज्ञान क्षेत्र का संदर्भ :

भाषा वैज्ञानिक सिद्धांत का अनुप्रयोग ज्ञान के किसी अन्य क्षेत्र को स्पष्ट करने के लिए स्वीकार किया जा सकता है। उदाहरण के लिए भाषा और समाज के बीच गहरा संबंध है। मनुष्य से बढ़कर समाज और भाषा दोनों एक दूसरे के अध्ययन के लिए संदर्भ बन जाते है। भाषा और समाज के संबंधों का अध्ययन जब भाषा की प्रकृति और उसके अपने प्रयोजनों को समझने के लिए किया जाता है तब वह समाज भाषाविज्ञान हो जाता है और जब हम भाषा और समाज के संबंधों को समाज की संरचना और प्रकृति को समझने के लिए अपनाते है तब वह भाषा का समाज शास्त्र बन जाता है।

२) विधा-विशेष का संदर्भ :

इसी प्रकार जब हम भाषाविज्ञान का सहारा लेकर संज्ञानात्मक बोध और मन की वृत्तियों का अध्ययन करते है, तो उस अध्ययन को भी अनुप्रयुक्त मनोविज्ञान के क्षेत्र में रख सकते हैं। विधा विशेष के संदर्भ में अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के अंतर्गत शैलीविज्ञान, अनुवाद

विज्ञान, कोशविज्ञान, भाषा नियोजन, वाक चिकित्साविज्ञान आदि आते हैं। भाषाविज्ञान का प्रयोग इन विभिन्न विषयों को समझने के लिए निश्चित सिद्धांत एवं प्रणाली प्रदान करता है। यह बात नहीं कि इन विषय क्षेत्रों के अध्ययन की अन्य दिशाएँ नहीं पर अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान इनके लिए जो आधार देता है, वह न केवल अपनी प्रकृति में भाषावादी है अपितु अपने व्यवहार में वस्तुवादी और प्रणाली में वैज्ञानिक है।

३) भाषा शिक्षण का संदर्भ :

अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का तीसरा संदर्भ भाषा शिक्षण है जो मातृभाषा शिक्षण की और अन्य भाषा शिक्षण अर्थात द्वितीय भाषा शिक्षण और विदेशी भाषा शिक्षण की भाषा वैज्ञानिक अंतदृष्टि उनमें हर स्तर पर प्रयुक्त होती है। शिक्षा सामग्री निर्माण, भाषा शिक्षण प्रणाली शैक्षणिक व्याकरण तकनीक आदि में भाषा वैज्ञानिक दृष्टि और अध्ययन प्रणाली का प्रयोग होता है। अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के अंतर्गत भाषिक भूमंडलीकरण का संबंध व्यावहारिक रूप से होता है। इससे पता चलता है कि भूमंडलीकरण के संदर्भ में भाषिक व्यवहार कैसे और क्यों होता है ? भूमंडलीकरण भाषा की जो माँग होती है, उसी के अनुसार उसका अनुप्रयोग लक्ष्य निर्धारित के संदर्भ में होता है । वास्तव में यह देखा जाता है कि भूमंडलीकरण के युग में भाषा की उपयोगिता जैसे जैसे बढ़ती जाती है, उसी के अनुसार उसके विभिन्न प्रयोजन एवं संदर्भ भी जुड़ जाते है। यह कार्य अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के अंतर्गत आता है।

३.५.२ व्यतिरेकी भाषा विज्ञान (Contrastive) :

"इस पद्धति में दो भाषाओं के व्यतिरेक अर्थात असामनताओं का अध्ययन करते है। इस भाषा विज्ञान को व्यतिरेकी भाषा विज्ञान कहते हैं।"

व्यतिरेकी भाषा विज्ञान (Contrastiv linguistics) भाषा-शिक्षण का व्यावहारिक तरीका है जो किसी भाषा-युग्म के समानताओं एवं अन्तरों का वर्णन करके भाषा को सुगम बनाने पर जोर देता है। इसीलिए इसे कभी अंतरात्मक भाषा विज्ञान भी कहा जाता है।

"व्यतिरेकी विश्लेषण अंग्रेजी के कॉन्ट्रास्टिव एनालिसिस शब्द का हिंदी पर्याय है।"

"दो भाषाओं की संरचनात्मक व्यवस्था के मध्य प्राप्त असमान बिंदुओं को उद्घाटित करने के लिए व्यतिरेकी विश्लेषण का प्रयोग किया जाता है। इसको एक व्यवस्थित शाखा के रूप में विकसित करने का श्रेय अमेरिकी भाषा विज्ञानियों चार्ल्स सी फ्रीज और राबर्ट लेडो को जाता है।"

परिभाषा :

"दो या दो से अधिक भाषाओंके सभी स्तरों पर तुलनात्मक अध्ययन द्वारा समानताओं और असमानताओं के निकालने को व्यतिरेकी विश्लेषण कहते है।"

- डॉ. भोलानाथ तिवारी

"भाषा विश्लेषण की यह तकनीक जिसके द्वारा भाषाओं में व्यतिरेक इंगित किया जाता है, व्यतिरेकी विश्लेषण कहलाती है।"

- डॉ. ललित मोहन बहुगुणा

उपयोगिता :

- अन्य भाषा शिक्षण के लिए पाठ्य सामग्री निर्माण करना।
- स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा में निहित समानताओं और असमानताओं की तुलना करके पाठ्य बिंदुओं का चयन करना।
- शिक्षार्थी की शिक्षण समस्याओं को समझना।
- शिक्षण विधियों का अविष्कार करना।
- त्रुटियों का निदान करना।

उद्देश्य :

- दो भाषाओं के बीच असमान और अर्धसमान तत्वों का पता लगाना जिससे भाषा सीखने या अनुवाद करने में उन स्थलों पर खास ध्यान दिया जा सकता है जहाँ असमान संरचनाओं के कारण त्रुटि या मातृभाषा व्याघात की संभावना अधिक होती है।

- व्यतिरेकी विश्लेषण के परिणामों से अनुवादक स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के असंवेदनशील स्थलों का पहले से अनुमान कर सकता है जहाँ असमान संरचनाओं तथा नियमों के कारण अनुवादक मातृभाषा व्याघात या अन्य कारणों से गलती कर सकता है। इस प्रकार वह लक्ष्य भाषा की संरचना और शैली की स्वाभाविक प्रकृति को पहचान कर कृत्रिम और असहज अनुवाद से बच सकता है।

- व्यतिरेकी विश्लेषण के फलस्वरूप उसे एक से अधिक समानार्थी अभिव्यक्तियों की उपलब्धि होती है। जिससे वह संदर्भ के अनुसार उपयुक्त विकल्प का चयन कर सकता है और अनुवाद में मूल पाठ की सूक्ष्म अर्थ छटाओं को सुरक्षित रख सकता है।

- एम.जी. चतुर्वेदी के अनुसार मातृभाषा अथवा लक्ष्य भाषा व्याघात के विश्लेषण के लिए, दो भाषाओं की तथा उनकी संरचनाओं के सभी स्वरों पर तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए दोनों भाषाओं के समान, अर्धसमान तथा असमान प्रयोगों को पहचानने के लिए तथा पाठ्यक्रम निर्माण के लिए त्रुटि, त्रुटि विश्लेषण के लिए और लक्ष्य भाषा शिक्षण के लिए व्यतिरेकी विश्लेषण का प्रयोग होता है।

व्यतिरेकी भाषाविज्ञान की मूल स्थापनाएँ :

अन्य भाषा शिक्षण में भाषा सीखने वाले को स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा में विहित व्यतिरेकों की तुलना।

- अन्य भाषा शिक्षण के लिए सबसे अधिक प्रभावी सामग्री वही है जो भाषा सीखने वाले की स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा का व्यतिरेकी विश्लेषण समान रूप से वैज्ञानिक पद्धति से करने में सक्षम हो तथा सही पाठ्य बिंदुओं का चयन कर सके।

- जो शिक्षक शिक्षार्थी की स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा की वैज्ञानिक पद्धति से तुलना करने की क्षमता रखता है, वह शिक्षार्थी की शिक्षण समस्याओं को ढंग से समझ सकता है और समस्याओं का समाधान कर सकता है।

वस्तुत: विविध प्रमुख भाषाओं के संरचनाओं का व्यतिरेकी विश्लेषण किया जाता है । यह विश्लेषण अनेक स्तरों पर कर सकते है जैसे - दोनों भाषाओं की ध्वनि व्यवस्था, व्याकरण, शब्दावली एवं लेखन व्यवस्थाओं की तुलना प्रस्तुत करना इस तुलना के मुख्य उद्देश्य दोनों भाषाओं में विहित ऐसी समस्याओं और असमानताओं पर प्रकाश डालना, दोनो भाषाओं सीखने वाले में पैदा होने वाली मनोवैज्ञानिक उलझनो को दूर करना।

व्यतिरेकी भाषाविज्ञान अनुप्रयोग का क्षेत्र :

व्यतिरेकी विश्लेषण का प्रयोग मुख्यत: भाषा शिक्षण और अनुवाद में होता है

भाषा शिक्षण : डॉ. भोलानाथ तिवारी का कथन है कि 'प्राय: यह समझा जाता है कि व्यतिरेकी विश्लेषण से अन्य भाषा शिक्षण में ही सहायता मिलती है, किंतु मातृभाषा शिक्षण में भी यह उपयोगी है क्योंकि कक्षा में भाषा का मानक स्वरूप ही सिखाया जाता है। इस संदर्भ में ध्यान देना चाहिए कि जिन उपभाषाओं/ बोलियों के क्षेत्रों से विद्यार्थी आ रहे हैं और उनमें क्या समानताएँ / असमानताएँ हैं उसे भाषा के शुद्ध प्रयोगों से परिचित कराना है, स्वीकृत वाक्य रचना का प्रयोग करके सिखाना है। अत: व्यतिरेकी विश्लेषण अन्य भाषा शिक्षण में ही नहीं, मातृभाषा शिक्षण में भी उपयोगी सिद्ध होता है।"

अनुवाद :

व्यतिरेकी विश्लेषण और अनुवाद दोनों का ही संबंध दो भाषाओं से होता है - एक स्रोत भाषा और दुसरी लक्ष्य भाषा। अनुवाद से स्रोत भाषा पाठ को लक्ष्य भाषा में रुपातंरित किया जाता है जबकि व्यतिरेकी विश्लेषण में स्रोत भाषा की संरचना का लक्ष्य भाषा की संरचना के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है । इसके बाद दोनों भाषाओं की व्यतिरेकों / भिन्नताओं को स्पष्ट किया जाता है। स्रोत भाषा के किसी कथन के लिए लक्ष्य भाषा में जब एकाधिक समानार्थक विकल्प सामने आते है, तब अनुवादक उपयुक्तता के आधार पर किसी एक विकल्प का चयन करता है।

राबर्ट लेडो द्वारा प्रतिपादित छह मानदंड :

विकल्प चयन की प्रक्रिया में व्यतिरेकी विश्लेषण का ही आश्रय लिया जाता है । अत: व्यतिरेकी विश्लेषण को अनुवाद का साधन माना जाता है। भाषाविद राबर्ड लेडो द्वारा प्रतिपादित छह मानदंड निम्नलिखित है।

१) रूप एवं अर्थ में समानता

२) रूपगत समानता और अर्थगत भिन्नता

३) रूपगत भिन्नता और अर्थगत समानता

४) भिन्न रूप एवं भिन्न अर्थ वाले शब्द

५) समान रूप और भिन्न रुप रचना एवं सह प्रयोग वाले शब्द

१) रूप एवं अर्थ में समानता -

इस वर्ग में उन शब्दों को रखा जाता है जो स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा में ध्वनि अथवा लिपि तथा अर्थ के स्तर पर समान होते है। इस वर्ग में आने वाले शब्द समान अथवा भिन्न मूल के हो सकते हैं। जैसे - कोठी, शहर, दीवार, कमरा आदि

२) रूपगत समानता और अर्थगत भिन्नता -

दो भाषाओं में प्राप्त समतुल्य शब्दों के मध्य कभी-कभी सूक्ष्म अर्थ में समानता होती है तो कभी सूक्ष्म भिन्नता वृद्धिगत होती है। अनेक शब्दों में पूर्ण अर्थगत भिन्नता भी दिखाई देती है। शोध के क्रम में कुछ ऐसे शब्द प्राप्त हुए हैं जिनमें रुपगत समानता किंतु अर्थगत भिन्नता व्याप्त है।

शब्द	**अर्थ**	
	हिंदी	**उर्दू**
सहन	बर्दाश्त करना	आँगन
सुदूर होना	अधिक दूर	जारी
बेल	एक प्रकार का फल	फावड़ा

३) रूपगत भिन्नता और अर्थगत समानता -

दो भाषाओं के मध्य पाए जाने वाले ऐसे शब्द जिनमें रूपगत भिन्नता एवं अर्थगत समानता होती है | इस वर्ग में रखे जाते हैं। एक ही भाषा के इस प्रकार के शब्दों को पर्यायवाची की संज्ञा दी जाती है।

हिंदी	उर्दू	अंग्रेजी
पेड़	दरख्त	Tree
जाँच	मुआयना	To check

४) भिन्न रूप एवं भिन्न अर्थ वाले शब्द -

प्रत्येक भाषा-भाषी के खान-पान, वेशभूषा, विचार, रीति, मान्यता तथा धार्मिक सोच से जुड़े ये शब्द हर भाषा के अपने होते है। भिन्न रूप तथा भिन्न अर्थ वर्ग के शब्द सांस्कृतिक परिस्थिति से ही संबंध रखते हैं। इन शब्दों को लक्ष्य भाषा का बोलने वाला पूर्ण रूप से समझने में असमर्थ होता है।

हिंदी	उर्दू	अंग्रेजी
पूजा	बुर्का	Alter
ब्रह्मचारी	काजी	Prayer
सन्यासी	ताबुत	Priest
आदि	आदि	etc.

५) समान रूप और भिन्न रूप रचना एवं सहप्रयोग वाले शब्द -

प्राय: भाषाओं में कतिपय ऐसे शब्द प्राप्त होते हैं जिनमें रूप एवं अर्थ के स्तर पर समानता होती है परंतु रूपरचना व सहप्रयोग के स्तर पर असमानता दृष्टिगत होती है।

दो भाषाओं में बहुचन के दो स्वर मिलते है।

सामान्य और विकारी

हिंदी - एकवचन - मंजिल, मकान, कागज

बहुवचन - साधारण मंजिलें, मकान, कागजों

विकारी - मंजिलों, मकानों, कागजों

अंग्रेजी - एकवचन - Destination, House, Paper

बहुवचन - Destinations, Houses, Papers

सहप्रयोग के उपवर्ग पुनरुक्ति का महत्वपूर्ण योगदान होता है। किसी शाब्दिक इकाई का पुन: पूर्ण या आंशिक प्रयोग जो कि नए अर्थ का बोध कराएँ उन्हें पुनरुक्ति की संज्ञा दी जाती है।

१) पूर्ण पुनरुक्ति -

इस वर्ग में दो समान शब्दों का प्रयोग किया जाता है और पूरी रचना से एक नया अर्थ दिखाई देता है जैसे -

हिंदी	उर्दू
कभी - कभी	ब्राज़ औकात / गाहे - ब - गाहे
धीरे - धीरे	आहिस्ता - आहिस्ता
जल्दी से जल्दी	शीघ्र अति शीघ्र

२) आंशिक पुनरुक्ति -

जब शब्द के किसी भाग को पुन: प्रयोग में लाया जाए तो यह प्रक्रिया आंशिक पुनरुक्ति कहलाती है। उदाहरणार्थ -

हिंदी	उर्दू
अपने - आप	खुद-ब-खुद
बातचीत	गुफ्तगु / बातचीत
आल्थी - पाल्थी	आलती पालती

समान कोशीय एवं भिन्न लक्ष्यार्थ वाले शब्द -

प्राय: भाषाओं में अनेक ऐसे शब्द पाए जाते है जो अपने मूल अर्थ से भिन्न या अधिक अर्थ का बोध कराते है। हिंदी-उर्दू में इस प्रकार के कई उदाहरण दृष्टिगत होते है जो अपने मूल अर्थ से भिन्न या अधिक अर्थ का बोध कराते है।

'मामू' शब्द नाते-रिश्ते की शब्दावली में माँ के भाई के लिए प्रयोग में आता है जब कि मुम्बई या हिंदी या बोलचाल की हिंदी में पुलिस वालों को 'मामू' कहा जाता है।

'हफ्ता' शब्द का अर्थ सप्ताह होता है किंतु अपराध जगत में 'असंवैधानिक' रूप से लिए गए कर को 'हफ्ता' कहते है।

हिंदी धातु 'फेक' का बोलचाल की भाषा में भिन्न लक्ष्यार्थ में प्रयोग मिलता है, यथावह फेक रहा है। यहां 'फेक' का अर्थ गलत है।

उपर्युक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि समान कोशीय एवं भिन्न लक्ष्यार्थ वाले शब्दों के स्तर पर हिंदी - उर्दू में समानता एवं असमानता विद्यमान है। इस वर्ग में आने वाले शब्दों का अनुवाद कैसा एक जटिल कार्य है क्योंकि ऐसे शब्द अपने मूल अर्थ से भिन्न लक्ष्यार्थ का बोध कराते है।

दो बोलियों के प्रयोगकर्ता जब परस्पर वार्तालाप करते समय एक दूसरे का आशय के साथ-साथ उन बोलियों का साधिकार प्रयोग करने में समर्थ होते है तो यह स्थिति 'पारस्परिक बोधगम्यता' के नाम से जानी जाती है। दो बोलियों के मध्य यह स्थिति मिलती है, किंतु दो भाषाओं के बीच पारस्परिक बोधगम्यता नहीं होती है। वास्तव में 'पारस्परिक बोधगम्यता' का अभाव ही दो भाषाओं की स्वतंत्र अस्मिता का परिचायक कहा जाता है।

अत: यह कहा जा सकता है व्यतिरेकी विश्लेषण वह आधार है जिसके माध्यम से दो भाषाओं की संरचनाओं को इस तरह आमने सामने रखा जा सकता है कि उनमें विहित व्यतिरेक का शिक्षार्थी आसानी से समझ सके ताकि अन्य भाषा सीखते समय मातृभाषा के कारण उत्पन्न होने वाली त्रुटियों को दूर किया जा सके।

३.६ सारांश

प्रस्तुत इकाई में विद्यार्थियों ने भाषा विज्ञान अध्ययन के क्षेत्र कौन-कौन से है। साथ ही भाषा विज्ञान की अध्ययन की दिशाएँ और उसके प्रकारों का अध्ययन किया है। भाषा विज्ञान में मस्तिष्क से उत्पन्न हुए शब्द का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है। इस इकाई के माध्यम से भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन-विश्लेषण की अनेक पद्धतियों को अपनाया गया है। इसे पाठकों के सामने प्रस्तुत किया गया है।

३.७ लघुत्तरीय प्रश्न

१) भाषा विज्ञान के अध्ययन में भाषा शब्द के द्वारा कितने घटकों का बोध होता है ?

२) "भाषा विज्ञान का क्षेत्र उतना ही व्यापक है, जितनी की सारी मानवता। इसका कारण यह है कि स्वयं मानव का संबंध भाषा के साथ है।" यह कथन किस विद्वान का है ?

३) 'रूप विज्ञान, रूप विचार और पद विचार' किसे कहा जाता है ?

४) 'वाक्य विज्ञान' कितने भागों में विभाजित है ?

३.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) भाषा विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र को स्पष्ट कीजिए।

२) भाषा विज्ञान की अध्ययन पद्धतियों पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

३) भाषा का अर्थ स्पष्ट करते हुए भाषा विज्ञान के प्रकार पर प्रकाश डालिए।

३.९ संदर्भ ग्रंथ

१) भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी

२) भाषा विज्ञान - डॉ. भोलानाथ तिवारी

३) हिंदी भाषा का उद्भव और विकास - डॉ. उदयनारायण तिवारी

४) भाषा विज्ञान के अधुनातम आयाम - डॉ. अंबादास देशमुख

❖❖❖❖

४

संसार की भाषाओं का वर्गीकरण

इकाई की रूपरेखा :

४.१ इकाई का उद्देश्य

४.२ प्रस्तावना

४.३ संसार की भाषाओं का वर्गीकरण

४.४ आकृतिमूलक वर्गीकरण

४.४.१ अश्लिष्ट योगात्मक

४.४.२ श्लिष्ट योगात्मक

४.४.३ प्रश्लिष्ट योगात्मक

४.५ पारिवारिक वर्गीकरण

४.५.१ ध्वनि समानता

४.५.२ व्याकरण समानता,

४.५.३ शब्द-समानता

४.५.४ स्थानिक समानता

४.६ सारांश

४.७ दीर्घोत्तरी प्रश्न

४.८ लघुत्तरी प्रश्न

४.९ संदर्भ ग्रन्थ

४.१ इकाई का उद्देश्य

- इस अध्याय विद्यार्थी निम्नलिखित मुद्दों से अवगत होंगे |
- संसार की भाषाओं के वर्गीकरण को जान सकेंगे |
- आकृतिमूलक वर्गीकरण की जानकारी मिलेगी |
- पारिवारिक वर्गीकरण का सम्पूर्ण अध्ययन कर सकेंगे |

४.२ प्रस्तावना

भाषा विज्ञान का सम्पूर्ण अध्ययन करने की श्रंखला में सांसारिक भाषाओं के अध्ययन के साथ साथ भाषायी वर्गीकरण का अध्ययन करना भी महत्वपूर्ण है | भाषावैज्ञानिकों के अनुसार विश्व की भाषाओं का मुख्य रूप से दो आधारों पर वर्गीकरण किया गया है। ये आधार हैं – आकृति या रचना तथा पारिवारिक या आनुवंशिक । रचनातत्त्व के आधार पर किया गया वर्गीकरण आकृति मूलक वर्गीकरण कहलाता है |ऐतिहासिक आधार पर जो वैज्ञानिकों ने भाषा का वर्गीकरण किया है उसका प्रमुख आधार पारिवारिक है | विद्वानों ने वर्गीकरण के अध्ययन का प्रमुख आधार व्याकरण और तुलनात्मक पद्धति से किया है |

४.३ संसार की भाषाओं का वर्गीकरण

यदि प्रश्न किया जाए कि संसार में कितनी भाषाएँ बोली जाती हैं ? तो कोई भी व्यक्ति उसका एक निश्चित उत्तर नहीं दे सकता हैं | जो भी उत्तर होगा वह अनुमानित ही होगा और उसी अनुमान के तहत संसार में बोली जाने वाली भाषाओं की संख्या ७०.००० के लगभग मानी गई हैं। वस्तुतः भाषाओं की निश्चित संख्या बताना असंभव है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति वह कितना ही बड़ा विद्वान क्यों न हो संसार में बोली जाने वाली सारी भाषाओं का ज्ञाता नहीं है। लेकिन सम्पूर्ण प्रदीर्घ भाषिक अध्ययन की दृष्टी से संसार की भाषाओं के विषय में ज्ञात होना आवश्यक है | हम यह भी जानते है कि हर चार कोस पर भाषा बदलती है वहीं वैश्विक दृष्टी से देश और वेश के अनुसार भाषा बदल जाती है | भाषाओँ के अपरिमित अध्ययन को हम उसके विशिष्ट वर्गीकरण के आधार पर समझ सकते है | वर्गीकरण से सांसारिक भाषा के अध्ययन में सहायता मिलेगी |

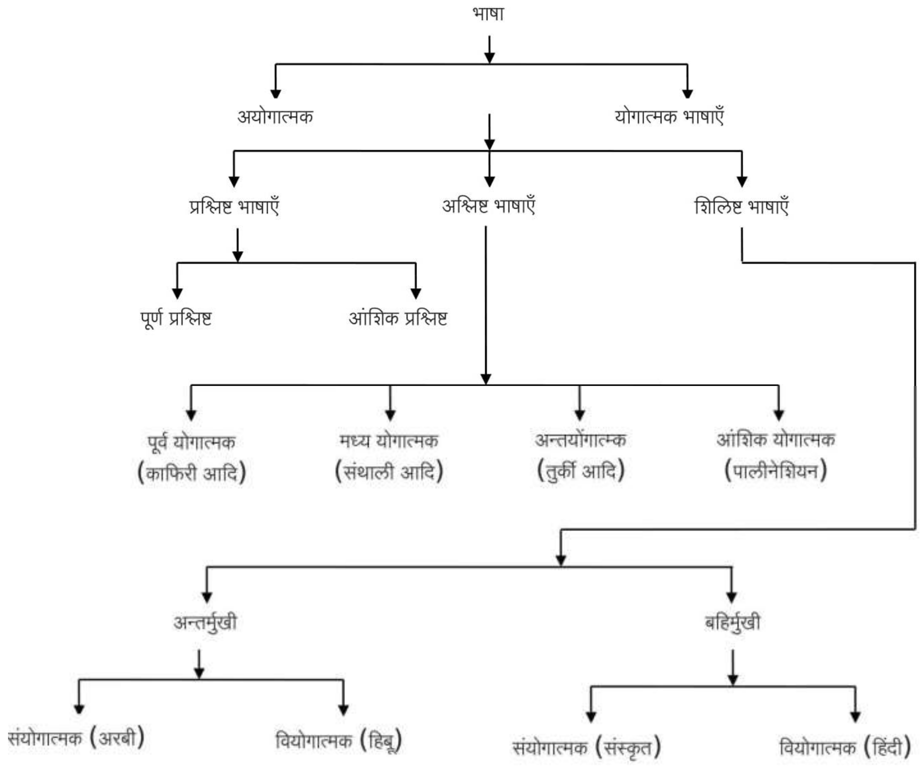

संसार की भाषाओं का वर्गीकरण कई प्रकार से हो सकता हैं, किन्तु भाषा-विज्ञान की दृष्टि से इसके दो प्रमुख आधार माने गये हैं: 1. आकृतिमूलक और 2. पारिवारिक ।

४.४ आकृतिमूलक वर्गीकरण

आकृतिमूलक वर्गीकरण का सम्बन्ध शब्द की केवल बाह्य आकृति या रूप या रचना-प्रणाली से होता है। अर्थ से इसका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता; इसीलिए इस प्रकार के वर्गीकरण में उन भाषाओं को एक साथ रखा जाता है जिनके पदों या वाक्यों की रचना का एक विशिष्ट प्रकार होता है। पद या वाक्य की रचना को ध्यान में रखकर इस वर्गीकरण को पदात्मक या वाक्यात्मक भी कहा जाता है। अंग्रेजी में इसे "morphological" कहते हैं। आकृतिमूलक के दो प्रमुख भेद हैं: 1. अयोगात्मक और 2. योगात्मक।

i) अयोगात्मक

अयोगात्मक भाषा उसे कहते हैं जिसमें प्रकृति-प्रत्यय जैसी कोई चीज़ नहीं होती है और न शब्दों में कोई परिवर्तन होता है। प्रत्येक शब्द की स्वतंत्र सत्ता होती है और वाक्य में प्रयुक्त होने पर भी वह सत्ता ज्यों-की-त्यों रहती है। इसलिए इस वर्ग की भाषा में शब्दों का व्याकरणिक विभाजन नहीं होता अर्थात् संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रियाविशेषण, आदि भेद इसमें नहीं होते |जैसे-

Seema calls Manisha

Manisha calls Seema

इन दोनों वाक्यों के शब्दों में कोई अंतर नहीं है; केवल स्थान बदल दिया गया है। पहले वाक्य में "Seema" कर्ता और "Manisha" कर्म है, मगर दूसरे वाक्य में केवल स्थान बदल जाने से ही "Manisha" कर्ता और "Seema" कर्म हो गया है।

इस प्रकार के वर्ग की भाषा चीनी है |चीनी भाषा के अतिरिक्त तिब्बती,बर्मी स्यामी,अनामी आदि भाषाएँ आती है |जिनमे प्रकृति और प्रत्यय का योग नहीं होता और न ही शब्द में कोई विकार आता है | शब्द समर्थ और स्वतंत्र होते है |अतः इस प्रकार के वाक्यों में पदक्रम की रुपरेखा बदलने से अर्थ भी बदल जाता है | इस प्रकार की भाषाओँ के लिए ISO, ATING, POSITIONAL, LOARGANE (व्यास प्रधान, निपात प्रधान, वियोगात्मक, स्थान प्रधान, अलगन्त, विकीर्ण, एकाक्षर, एकाच धातु प्रधान, निरिन्द्रिय, निरवयव, निर्योग तथा निर्योगी आदि पद्क्रमों का प्रयोग अंग्रेजी और हिंदी पुस्तकों में मिलता है |

एस क्रम में अफ्रीका की सूडानी भाषा जो कि स्थान प्रधान है और एशिया की मलय तिब्बती भाषा जो निपात है इसी क्रम की भाषा में दर्ज होती है | इसमें पदक्रम को जितना महत्व है उतने ही स्वर और लहजा भी महत्वपूर्ण है | क्योंकि अपूर्ण पद भी पूर्ण अर्थ दर्शाते है |

ii) योगात्मक

जैसा कि योगात्मक शब्द से स्पष्ट है, इस वर्ग की भाषाओं में प्रकृति-प्रत्यय के योग से शब्दों की निष्पति होती है। योगात्मक भाषा उसे कहते है जिसमें हर एक शब्द अपना अलग अस्तित्व रखता है इसमें किसी दुसरे शब्द के कारण कोई विकार या परिवर्तन नहीं होता | प्रत्येक शब्द की अलग-अलग संबंधतत्व या अर्थतत्व को व्यक्त करने की, शक्ति इस प्रकार के वाक्य में होती है। और उन शब्दों का परस्पर संबंध केवल वाक्य में उनके स्थान से

मालूम होता है। हिंदी भाषा से हम कुछ ऐसे वाक्य का उदाहरण ले सकते है जैसे – मनोज आनन्द के घर जाता है,आनन्द मनोज के घर जाता है। इन दोनों वाक्यों में प्रत्येक शब्द का अलग-अलग स्वतंत्र अस्तित्व है, और उनका परस्पर संबंध वाक्य में पदक्रम से ही मालूम होता है। पहले वाक्य के मनोज और आनन्द का स्थान उलट देने से परस्पर अर्थ भी उलट गया, पर पदों में कोई विकार नहीं हुआ। इस वर्ग की भाषाओँ के लिए प्रकृति प्रत्यय प्रधान, व्यक्त योग, उपचयोंमुख, उपचयात्मक, संचयात्मक, संयोगात्मक, संयोगी, संयोगी प्रधान, संचयोंमुख, सावयव आदि का भी प्रयोग प्रमुखता से मिलता है | इसी प्राकृति के आधार पर योगात्मक के तीन प्रमुख भेद हैं :

- अश्लिष्ट योगात्मक
- श्लिष्ट योगात्मक
- प्रश्लिष्ट योगात्मक

४.४.१ अश्लिष्ट योगात्मक : इस वर्ग की भाषाएँ प्रत्यय प्रधान होती है | इसमे अर्थ तत्व (प्रकृति) और सबंध तत्व (प्रत्यय) दोनों का योग होता है और उनका अस्तित्त्व भी बराबर बना रहता है | इस वर्ग की भाषा तुर्की है। तुर्की में सेव का अर्थ प्यार है | इसके शब्द का वाक्य रचना द्वारा कुछ उदहारण इस प्रकार है – सेव इस मेक –प्यार करना, सेव एज मेक - परस्पर प्यार करना, सेव दिर मेक – प्यार करवाना, सेव इल मेक प्यार किया जाना | हिंदी भाषा इस वर्ग की भाषा नहीं है किन्तु अश्लिष्ट योगात्मक में इसके कुछ उदहारण मिलते है जैसे – शिशुत्व = शिशु, धनत्व = धन आदि |इसके पाँच भेद स्वीकार किये गये है –

१) पूर्व योगात्मक
२) मध्य योगात्मक
३) अंत योगात्मक
४) आंशिक योगात्मक
५) पुर्वांत एवं सर्व योगात्मक

१. **पूर्व योगात्मक -** पूर्व योगात्मक भाषाओँ में पूर्व प्रत्यय,उपसर्ग,उपसर्ग प्रकृति या अर्थ तत्व पूर्व प्रयुक्त होता है | अफ्रीका के बांटू परिवार जुलू, और कोफिर भाषाएँ इसी श्रेणी में आती है | जुलू भाषा का एक उदाहरण इस प्रकार है – इस भाषा में उमु – एकवचन का चिह्न है, अब –बहु वचन का चिह्न है, न्तु का अर्थ है आदमी,और न्ग का अर्थ है से इस प्रकार इन सभी शब्दों के योग से शब्द बनता है- उमुन्तु जिसका अर्थ है – एक आदमी,अवन्तु शब्द का अर्थ है – कई आदमी |

२. **मध्य योगात्मक -** मध्य योगात्मक अन्तः प्रत्यय प्रधान वर्ग के अंतर्गत आता है | इस प्रकार की भाषाओँ में सम्बन्ध तत्व मध्य में जुड़ता है | भारत की मुंडा और हिन्द महासागर में स्थित मेडगास्कर द्वीप की भाषाएँ इस वर्ग में आती है | मध्य योगात्मक भाषा में मुंडा परिवार की संथाली भाषा का उदहारण इस प्रकार है | संथाली भाषा में मांझी शब्द का अर्थ मुखिया है यदि इसमें 'प' प्रत्यय जोड़ दे तो उसका बहुवचन रूप होगा 'मंपाझ़ी' जिसका अर्थ होगा 'मुखिया लोग' | ठीक इसी प्रकार 'दल' शब्द का अर्थ है मारना और दल शब्द के बीच में 'प' प्रत्यय जोड़ने से 'दपल' शब्द की निर्मिती होती है जिसका अर्थ होता है परस्पर मारना |

३. **अंत योगात्मक** – अंत योगात्मक प्रकार की भाषाओँ में प्रत्यय अंत में लगता है | यूराल,द्रविड़,अल्लाई परिवार की भाषा इस श्रेणी में आती है | लुर्को भाषा में एक उदहारण – एव शब्द का अर्थ है –घर, एव देन का अर्थ – घर से, एव इम का अर्थ – मेरा घर, इव इम देन का अर्थ है – मेरे घर से |

४. **आंशिक योगात्मक –** इस प्रकार की भाषाओँ में विभक्ति और प्रत्यय का मेल साथ रहता है | प्रत्यय समास और विभक्तियाँ भी अपना सहयोग देती है | इस प्रकार की भाषा में अयोगात्मकता होती है | जापानी,काकेरी और अफ्रीका के सुडान परिवार की भाषा,यूरोप के बास्क परिवार की भाषा,पलिनेशियन परिवार आदि भाषाओँ का झुकाव अयोगात्मकता की ओर है |

५. **पुर्वांत एवं सर्व योगात्मक -** इस वर्ग की भाषाओँ में सम्बन्ध तत्व शब्द के पहले और बाद में लगते है | फ्रेंच और न्यूगिन की मफोर भाषा में इस प्रकार के उदहारण देखने को मिलते है | मफोर भाषा का एक उदाहरण इस प्रकार है- म्नफ का अर्थ सुनना, 'ज' का अर्थ है – मै, 'उ' का अर्थ है – तू ,जम्नफ-उ का अर्थ है मै चुनता हूँ तुझे (मै तेरी बातें सुनता हूँ) |

४.४.२ श्लिष्ट योगात्मक: श्लिष्ट उन योगात्मक भाषाओँ को कहते हैं, जिनमें संबंधतत्व को जोड़ने के कारण अर्थतत्व वाले भाग में भी कुछ विकार उत्पन्न हो जाता है। जिसके कारण संबंधतत्व कुछ अलग सा लगता है; जैसे- संस्कृत के वेद, नीति, इतिहास, शब्दों से वैदिक, नैतिक, ऐतिहासिक शब्द अतः स्पष्ट है यहाँ इक जोड़ा गया है | परिणामस्वरुप वेद आदि शब्दों में भी विकार आ गया। श्लिष्ट भाषाओं के भी दो विभाग किए जाते हैं-- एक ऐसे जिनमें जोड़े हुए भाग (ध्वनियां) मूल (अर्थतत्व) के बीच में घुल मिलकर रहते हैं और दूसरी ऐसी जिनमें जोड़े हुए भाग प्रधानत: मूल भाग के बाद आते हैं। अरबी आदि समी परिवार की भाषाएं प्रथम विभाग की उदाहरण स्वरूप हैं और संस्कृत आदि प्राचीन आर्यभाषाएं इसके अंतर्गत आती है | इसके प्रमुख रूप से दो भेद है -१) अन्तर्मुखी श्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ , २) बहिर्मुखी श्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ |

१) **अन्तर्मुखी श्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ : -** सेमेटिक और हेमेटिक परिवार की भाषाएँ इस श्रेणी में आती है | इनमें प्रायः विभक्तियों के आंतरिक योग से अनेक प्रकार के रूप बन जाते है | इसके दो रूप देखने को मिलते है – संयोगात्मक और वियोगात्मक

क) **संयोगात्मक –** इस वर्ग में अरबी भाषा को प्रमुख रूप से लिया जा सकता है इसका एक उदहारण – क.त.ब. (धातु) कातिब –लेखक,कुतुब – किताबें,कुलुबा – लेख |

ख) **वियोगात्मक –** इस प्रकार की भाषा में शब्द की सार्थकता पूर्ण रूप से दिखती है सहायक शब्द की आवश्यकता रहती है और वाक्य गौण रूप में होते है | हिब्रु भाषा इसका महत्वपूर्ण उदाहरण है |

२) बहिर्मुखी श्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ - बहिर्मुखी विभक्ति प्रधान भाषाओँ को कहा जाता है | भारोपीय भाषाएँ इस श्रेणी में आती है | संस्कृत और हिंदी इस वर्ग की भाषा है |

क) संयोगात्मक - संस्कृत इसका सर्वोत्तम उदाहरण है – राम : रामने | रामौ - दो रामोने रामः सभी रामों ने रामम – रामको | लिथुअनियन भाषा अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण अधिक बदलाव नहीं आया इसीलिए यह संयोगात्मक बनी हुई है |

ख) वियोगात्मक - इसका सर्वोत्तम उदाहरण हिंदी भाषा है | शिलिष्ट योगात्मक वर्ग की भाषाओ की प्रकृति वियोगात्मक होती जा रही है | संस्कृत से विकसित भाषा हिंदी,लैटिन आदि इसके अंतर्गत आती है | आधुनिक भाषाओँ में विभक्तियों का ह्रास हो रहा है और सहायक क्रिया मूल शब्द के साथ लग रही है | एक उदाहरण रामः पठित (संयोगात्मक) राम पढता है | वियोगात्मक है क्योंकि सहायक क्रियापद लगा हुआ है | अंग्रेजी,बंगला आदि भी इस वर्ग की भाषा है |

४.४.३ प्रश्लिष्ट योगात्मक :

प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषा वह है जिसमें अर्थतत्व और सम्बन्धतत्व का मिश्रण ऐसा होता है कि उनको पह्चानना या पृथक करना सम्भव नहीं होता । प्रश्लिष्ट भाषाओं में न केवल एक अर्थतत्व का और एक या अनेक संबंधतत्व का योग होता है बल्कि एक से अधिक अर्थतत्वों का समास की प्रक्रिया से योग हो सकता है, ऐसी भाषाएँ समस प्रधान होती है | जैसे- सं० राजपुत्र: राजपुत्रगण: राजपुत्रगणविजय:। प्रश्लिष्ट भाषाओं में कभी- कभी पूरा वाक्य जोड़ कर एक शब्द बन जाता है । अंग्रेजी भाषा में भी ऐसे उदाहरण है जैसे - “United nations Economical,social and culture organisation” इन शब्दों के प्रथम अक्षरों को लेकर UNESCO शब्द बना है | जैसे - इस प्रकार का एक और उदाहरण है – जो अनेक अर्थतत्वों का थोड़ा-थोड़ा अंश काटकर एक शब्द बन जाता है। जैसे "जिगमिषति" = "वह जाना चाहता है"| प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषा के दो उपभेद किये गये है |

१) पूर्ण प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषा

२) आंशिक प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषा

१) **पूर्ण प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषा -** पूर्ण प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं में अर्थ तत्व,सम्बन्ध तत्व और समस्त व्याकरण के समीकरण एक दुसरे से सघन योग स्थापित करते है कि पूर्ण वाक्य का एक शब्द बन जाता है | जैसे - ग्रीनलैड की भाषा में अउलिसरिअतोंर (वह मछली मारने के लिए जाने की जल्दी करता है) में अउलिसर (मछली मारना) पेअतोंर (किसी काम में लगना) और पेन्नुसुअपोंक (वह जल्दी करता है) इन तीन का सम्मिश्रण है । अमरीका महाद्वीप के मूल निवासियों की भाषाएं अधिकतर इसी तरह की है।

२) **आंशिक प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषा -** आंशिक प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषा उपवर्ग की भाषाओँ में सर्वनाम और क्रिया पदों का मेल होता है | इसमें क्रिया अस्तित्वहीन होकर सर्वनाम के पूरक हो जाती है | पेरोनीज पर्वत के पश्चिमी भाग में बोली जाने वाली बास्क भाषा भी इसी श्रेणी में आती है | इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार है – दकार किओत – मै इसके पास ले जाता हूँ | ‘नकारसु – तु मुझे ले जाता है | हकारत – मै तुझे ले जाता हूँ | इस प्रकार आधुनिक आर्य भाषा एस्किमों या बास्क भाषा भी इसी श्रेणी में आती है | भारोपीय परिवार की भाषा में भी इस प्रकार के कुछ उदाहरण मिलते है |

४.५ पारिवारिक वर्गीकरण

भाषा विज्ञान के सम्पूर्ण अध्ययन में भाषाओं के वर्गीकरण का अध्ययन प्रमुखता से किया जाता है | भाषा परिवार से तात्पर्य अनुवांशिक और पूर्वजों द्वारा उपयोग में लायी जाने वाली भाषा से है | इसी आधार पर पारिवारिक वर्गीकरण का अध्ययन किया जाता है | भाषा के पारिवारिक वर्गीकरण का सुचारू रूप से अध्ययन के लिए विश्व की विभिन्न भाषाओँ का अध्ययन तुलनात्मक पद्धति से किया गया है | और इसी आधार पर विभिन्न भाषा परिवारों की स्थापना की गई है इनमे भारत-यूरोपीय (भारोपीय) परिवार, द्रविड़ परिवार, चीनी परिवार, आस्ट्रेलियाई परिवार, अमरीकी परिवार आदि भाषिक परिवार को आधार बनाकर सुलभता से पारिवारिक वर्गीकरण का अध्ययन किया जा सकता है । भाषा वैज्ञानिकों ने विश्व के 18 प्रमुख भाषा परिवारों का वर्णन किया है, जिनमें से भारोपीय भाषा परिवार का महत्व सबसे ज़्यादा है। क्योंकि – जनसंख्या की दृष्टि से इसके बोलने वाले सर्वाधिक हैं और बहुत बड़े भूभाग में इस परिवार की भाषाएँ बोली जाती हैं। इस परिवार से संबद्ध भाषाएँ युरोप तथा एशिया के काफ़ी बड़े भाग में बोली जाती हैं। साहित्यिक दृष्टि से भी इन भाषाओं का साहित्य उत्कृष्ट है। इस परिवार की भाषाओँ का सर्वाधिक अध्ययन हुआ है।

यदि हम स्पेनिश, पुर्तगाली, इतालवी, रोमानियाई भाषाओं की तुलना करें तो हम इन भाषाओं में एक प्रकार की “पारिवारिक समानता” पाते हैं। वहीं जर्मन और फ्रांसीसी भाषा की तुलना करते समय यह “पारिवारिक समानता” हमें नहीं दिखाती | किंतु अंग्रेजी, डच, स्वीडिश या डेनिश, जर्मन आदि भाषा की तुलना की जाए तो इन भाषाओं के बीच एक ‘’आनुवंशिक समानता” दिखाई देती है। और यही स्थिति हमें हिंदी, बांग्ला, असमिया, उड़िया. मराठी, गुजराती, पंजाबी आदि भाषाओं में भी मिलती है। यदि इन भाषाओं की तुलना करें तो हमें इनमें एक प्रकार की आनुवंशिक समानता मिलती है, ये सभी भाषाएँ आर्य भाषा परिवार से संबंध रखती हैं। किंतु यदि हम मराठी या बांग्ला या हिंदी की तुलना तेलुगु या तमिल से करें तो इनमें समानता नहीं मिलती क्योंकि ये भाषाएँ भिन्न परिवार की भाषाएँ हैं। मराठी, बांग्ला ओर हिंदी आर्य परिवार की भाषाएँ हैं तो तेलुगु और तमिल द्रविड़ परिवार की।

भाषाओं के परिवारिक वर्गीकरण के अध्ययन के लिए निम्न मुद्दों को आधार बनाकर समझा जा सकता है: (क) ध्वनि समानता, (ख) व्याकरण समानता, (ग) शब्द-समानता, (घ) स्थानिक समानता। इन चार आधार पर भाषाओं का वर्गीकृत अभ्यास किया जा सकता है |

४.५.१ ध्वनि समानता –

यदि बोली जाने वाली भाषाओँ में प्रयुक्त ध्वनियों में समानता होती है तो उनमें पारिवारिक सम्बन्ध होने की सम्भावना भी हो सकती है | क्योंकि समय,स्थान और वातावरण के साथ ध्वनियों के विकास और बदलाव में भी परिवर्तन आता है | जैसे कि संस्कृत, फ़ारसी, रूसी, फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेज़ी आदि भाषाएँ भारोपीय परिवार की भाषाएँ हैं। यदि हम संस्कृत भाषा का उदहारण लेते है तो संस्कृत वर्णमाला के ऋ, ष, ज्ञ, ऐ, औ आदि का मूल रूप में उच्चारण आज नहीं मिलता यदि है तो वह बहुत कम है | संस्कृत में ज, ड़, ढ़ ध्वनियाँ नहीं थी जबकि अन्य भाषाओं में यह ध्वनि है। संस्कृत में टवर्ग ध्वनियाँ थीं, किंतु अन्य भारोपीय

भाषाओं में ये ध्वनियाँ नहीं है। किंतु उससे विकसित भारतीय आर्य भाषाओं में ये ध्वनियाँ मिलती हैं। समय के साथ भाषा विदेशी भाषाओं के संपर्क में आ जाती है और एक भाषा पर दूसरी भाषा का प्रभाव अपने आप ही पड़ जाता है, जैसे अरबी-फ़ारसी के संपर्क से हिंदी में क़, ख़, ग़, फ़, ज़ आदि ध्वनियाँ भी आ गईं। वहीँ विदेशी शब्दों को आत्मसात करने में मूल अरबी-फ़ारसी ध्वनियों में परिवर्तन आया है।

४.५.२ व्याकरण समानता -

व्याकरण समानता के अंतर्गत पद रचना और वाक्य रचना की समानता को देखा जाता है |इस स्तर पर क्रिया शब्द, उनकी धातु, प्रत्यय के जुड़ने के स्वरूप, प्रत्यय धातु के आदि, मध्य या अंत में कहाँ लगते हैं तथा वाक्य की रचना किस प्रकार से होती है – इन मुद्दों पर विचार किया जाता है।

४.५.३ शब्द-समानता -

शब्द-समानता के अंतर्गत भाषाओं में आधारभूत शब्दावली संबंधी समानता का अध्ययन किया जाता है। इसमें शब्द के अर्थ के साथ-साथ उसकी आकृति पर भी विचार किया जाता है। यदि भाषा में शब्द समानता मिलती है तो यह पारिवारिक दृष्टि से संबंद्ध होने की सम्भावना रहती है। इसी आधार पर संस्कृत, फ़ारसी, ग्रीक, लैटिन, जर्मन, अंग्रेज़ी और हिंदी के कुछ आधारभूत शब्दों में पारिवारिक समानता दिखाई देती है। जो कि दर्शाती है कि यह भाषा भारोपीय परिवार के अंतर्गत हैं या नहीं। उदाहरण के लिए हम माँ शब्द लेते है जो की सभी भारोपीय भाषाओँ में समानता रखता है | जैसे – संस्कृत में मातृ, फारसी में मादर, ग्रीक में Mater, लैटिन में Mater, जर्मन में Mutter, अंग्रेजी में Mother और हिंदी में माता कहा जाता है |

४.५.४ स्थानिक समानता -

स्थानिक समानता में स्थान की दृष्टि से एक दूसरे से सम्बद्धता का अध्ययन किया जाता है। इससे उन भाषाओं का एक परिवार से संबद्ध होने की संभावना बढ़ जाती है। हमारे देश में विभिन्न भाषाएँ और बोलियाँ है | इन अथाह भारतीय भाषाओँ में हिंदी, पंजाबी, बांग्ला, गुजराती आदि ऐसी भाषाएँ हैं जो एक परिवार में आती हैं। लेकिन स्थान समीपता पारिवारिक वर्गीकरण का एकमात्र कारण नहीं हो सकता है। लेकिन कुछ भाषाएँ एक दूसरे के समीप होकर भी एक परिवार में सम्मिलित नहीं होतीं, जैसे तेलुगु, मराठी, कन्नड स्थान की दृष्टि से समीप हैं किंतु भिन्न परिवार की भाषाएँ हैं जबकि जर्मन, अंग्रेजी, फ्रेंच, संस्कृत आदि स्थान के आधार पर दूर होकर भी एक परिवार – भारोपीय परिवार में आती हैं। इस प्रकार स्थान समीपता पारिवारिक समानता का कारण हो सकता है |

सम्पूर्ण विश्व में जो भाषाएँ अधिकृत रूप से जानी जाती हैं, उन्हें विद्वानों ने प्रमुख रूप से बारह परिवारों में विभाजित किया गया है:

१) **सेमेटिक कुल** : हजरत नोह के सबसे बड़े पुत्र 'सैम' के नाम के अनुसार इस परिवार का नाम है। इस कुल की भाषाओं का क्षेत्र फ़िलिस्तीन, अरब, इराक़, मध्य एशिया

तथा मिस्र, इथियोपिया, अल्जीरिया, मोरोक्को तक माना जाता है। यहूदियों की प्राचीन भाषा हिब्रू तथा अरबी इसी परिवार की भाषाएँ हैं।

२) **हेमेटिक परिवार** : हामी परिवार को ही हेमेटिक परिवार के नाम से जाना जाता है। इस परिवार की प्रमुख भाषाओं में कुशीन, लीबीयन, सोमाली तथा हौसा, आदि भाषाएँ शामिल हैं।

३) **तिब्बती-चीनी परिवार** : जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि तिब्बत तथा चीन में इस भाषा की प्रधानता है। जापान को छोड़कर दूसरे सभी बौद्ध धर्मावलम्बी देश: चीन, बर्मा, थाईलैंड में इस परिवार की भाषाएँ बोली जाती है।

४) **युराल-अल्ताई परिवार** : इस भाषा परिवार के लोगों का युराल तथा अल्ताई पवतों में निवास करने के कारण यह नाम पड़ा। इस परिवार की भाषाओं में चीन के उत्तर में मंचूरिया, मंगोलिया, साइबेरिया आदि क्षेत्र की भाषाओं का समावेश है। जिनमे तुर्की, तातारी, मंचू, मंगोली, और किर्गिज़ आदि प्रमुख भाषाएँ हैं।

५) **द्रविड़ परिवार** : द्रविड़ जाति द्वारा बोली जाने वाली समस्त भाषाओं का नाम द्रविड़ परिवार है। इस कुल की भाषाएँ बोलने वाले मुख्य रूप से दक्षिण भारत तथा लक्षद्वीप के निवासी हैं। इस कुल की मुख्य भाषाएँ है — तमिल, मलयालम, तेलुगु तथा कन्नड़।

६) **ऑस्ट्रोनेशियाई कुल** : इस परिवार की प्रमुख भाषाओं में इंडोनेशिया तथा मलेशिया की मलय, फ़ीजी की फ़ीजीयन, जावा की जावानीज़ तथा न्यू ज़ीलैण्ड की माओरी, आदि भाषाएँ शामिल हैं।

७) **बाँटु परिवार** : बाँटु का अर्थ है "मनुष्य।" 'बाँटु' अफ्रिकी खण्ड का भाषा परिवार है। इस परिवार की मुख्य भाषाओं में ज़ुलु, काफ़िर, सेंसतों, स्वाहिली, आदि।

८) **कौकेशीय कुल** : कैस्पियन सागर के मध्य कौकेशस पहाड़ के निकटवर्ती प्रदेश इस कुल की भाषाओं में शामिल हैं। इसकी मुख्य भाषा जार्जियन है।

९) **अमेरिकी भाषा-परिवार** : इसमें उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका के मूल निवासियों की करीब चार सौ भाषाएँ आती हैं,जिनमें कुकूचुला और गुअर्नी प्रमुख हैं।

१०) **फ़िनो-यूग्रिक कुल** : इसका प्रमुख क्षेत्र हंगरी, फिनलैण्ड, एस्टोनिया, लेयलैण्ड आदि है और इस क्षेत्र की प्रमुख भाषाएँ फ़िनिश और हंगोरियन हैं।

११) **एस्किमो भाषा कुल** : इस कुल में ग्रीनलैंड तथा एलुशियन द्वीपमाला के प्रदेश आते है। जिसका सम्बन्ध उत्तरी अमेरिका से है।

१२) **हिन्द-यूरोपीय परिवार** : हिंद – यूरोपीय परिवार भारत से यूरोप तक बहुत बड़े क्षेत्रफल में फैला हुआ है। हिन्द-यूरोपीय भाषा परिवार में विश्व की सैंकड़ों भाषाएँ और बोलियाँ सम्मिलित हैं। इस परिवार को 'आर्य परिवार' तथा 'इण्डो-यूरोपियन' परिवार के नाम से भी जाना जाता है। यह परिवार विश्व के सभी भाषा-परिवारों में सबसे बड़ा है यही कारण है कि यह सर्वाधिक समृद्ध एवं उन्नत परिवार हैं। आधुनिक हिन्द यूरोपीय भाषाओं में से कुछ प्रमुख भाषाएँ है|

४.६ सारांश

इस इकाई में हमने संसार की भाषाओँ के वर्गीकरण के दो प्रमुख आधार आकृति मूलक और पारिवारिक वर्गीकरण की चर्चा की है। आकृति मूलक और पारिवारिक वर्गीकरण का अध्ययन विभिन्न आधारों के माध्यम से किया है | इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी आसानी से सभी मुद्दों से परिचित हो सकेंगे |

४.७ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. संसार की भाषाओं का वर्गीकरण के प्रमुख आधारों का विस्तार से वर्णन कीजिए |

२. भाषाओँ के आकृति मूलक वर्गीकरण को विस्तार से लिखिए |

३. भाषाओँ के पारिवारिक वर्गीकरण को विस्तार से लिखिए |

४. भाषाओँ के आकृति मूलक वर्गीकरण के प्रमुख आधार कौनसे है ? वर्णन कीजिए |

५. भाषाओँ के पारिवारिक वर्गीकरण के प्रमुख आधारों को उल्लेखित करें |

४.८ लघुत्तरी प्रश्न

१. योगात्मक भाषा योग की प्रकृति के आधार पर कितने वर्गों में बांटा गया है ?

२. तेलुगु और तमिल किस परिवार की भाषा है?

३. जर्मन, अंग्रेजी, फ्रेंच, संस्कृत कौनसे परिवार की भाषा है ?

४. प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषा के कितने उपभेद किये है ?

४.९ संदर्भ ग्रन्थ

१. भाषा विज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी

२. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी

३. भाषा विज्ञान के अधुनातन आयाम - डॉ. अम्बादास देशमुख

❖❖❖❖

५

भाषा और संप्रेषण, मानवीय एवं मानवेतर भाषा

इकाई की रूपरेखा :

५.१ उद्देश्य

५.२ प्रस्तावना

५.३ भाषा और संप्रेषण

५.४ मानवीय और मानवेतर भाषा

५.५ निष्कर्ष

५.६ प्रश्नोत्तर

५.१ उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको निम्नलिखित विषयों की जानकारी प्राप्त होगी।

१) भाषा और संप्रेषण के माध्यम से संप्रेषण की क्रिया और भाषा के आपसी संबंध की जानकारी प्राप्त होगी।

२) संप्रेषण की क्रिया में विविध आयामों की जानकारी प्राप्त होगी।

३) भाषा का मानवीय और मानवेतर समाज में उपयोगिता का पता चलेगा।

४) सफल संप्रेषण की जानकारी का पता चलेगा।

५) संप्रेषण की प्रक्रिया को समझते हुए उसके प्रयोजनों की जानकारी मिलेगी।

५.२ प्रस्तावना

इस इकाई के आरंभ में संप्रेषण का अर्थ स्पष्ट करते हुए भाषा की महत्वता का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। संप्रेषण के विविध आयामों में उसके बोलकर, लिखकर और शारीरिक हाव-भाव के आधार पर तीन प्रकार किए गए हैं। संप्रेषण के बिना मानव समाज ज़िंदा नहीं रह सकता, क्योंकि मानव समाज के पास एक भाषा है। इसी भाषा के आधार पर वह अन्य प्राणियों से अलग होते हुए अपने समाज से जुड़ता है। इस भाषा के माध्यम से वह व्यक्तिगत जरूरत से लेकर मनोरंजन तक की कई प्रकार की जरूरतों को संप्रेषण के जरिए पूरी करता है। यही एक तरह से संप्रेषण का प्रयोजन भी है। संप्रेषण में भाषा के प्रयोग से ही कई बार हमसे लोग नाराज हो जाते हैं या प्रसन्न हो जाते हैं अथवा प्रसन्न होकर गले लगा लेते हैं। वास्तव में संप्रेषण एक कला है। इस कला में जिसने जितनी महारत हासिल की उतनी सफलता उसे जीवन में मिलेगी।

५.३ भाषा और संप्रेषण

मनुष्य जब जन्म लेता है, संप्रेषण ही उसके भावबोध का महत्वपूर्ण माध्यम व साधन होता है। मनुष्य भाषा के माध्यम से न केवल अपने विचारों को अभिव्यक्त करता है इसके अलावा उन्हें दूसरों तक संप्रेषित भी करता है। संप्रेषण प्रक्रिया में एक ओर संप्रेषण कर्ता संबोधन रूप में वक्ता अथवा लेखक की भूमिका निभाता है, दूसरी ओर संबोधित रूप में श्रोता अथवा पाठक संप्रेषण प्रक्रिया को संदेश ग्रहण करके पूर्ण करता है। इस संप्रेषण प्रक्रिया में श्रोता अथवा पाठक और वक्ता अथवा लेखक संप्रेषण व्यवहार के मध्याम के रूप में भाषा का प्रयोग करता है। इस संप्रेषण प्रक्रिया में भाषा के माध्यम से इस अभिव्यक्ति की प्रक्रिया पूर्ण होती है। अभिव्यक्त किए गए संदेश को संबोधित रूप में श्रोता अथवा पाठक भाषा के माध्यम से अर्थ के रूप में ग्रहण करता है। जन्म लेते ही जब बच्चा पहली बार रोता है तब समाज के साथ उसका पहला संवाद होता है। यही संवाद संप्रेषण का रूप लेता है। उसके बाद हर एक क्षण और आजीवन संप्रेषण की यह प्रक्रिया चलती रहती है। यह संप्रेषण सर्वप्रथम ध्वनि से फिर शब्दों के जरिए संवेदनाओं आदि के माध्यम से परस्पर संप्रेषण की प्रक्रिया में चलते रहते हैं। इन सब में हम अपनी समस्त ज्ञानेंद्रियों अर्थात आंख, हाथ, कान और अपने शरीर के समस्त अंगों का प्रयोग करते हैं भाषा की इसमें सबसे महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ध्वनि अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण साधन होती है। इसमें वक्त वक्ता संबोधन रूप में अपने संदेशों को भाषा में बांधकर मुंह से उसका उच्चारण करता है और श्रोता संबोधित रूप में उसे सुनकर अर्थ ग्रहण करता है जबकि लिखित रूप में भाषा अपनी भाषिक अभिव्यक्ति के साधन की लेखन की भूमिका निभाती है। इसमें संबोधक रूप में लेखक अपने संदेशों को लिखकर अभिव्यक्त करता है और पाठक संबोधित रूप में पढ़कर उसके अर्थ को ग्रहण करता है। यहां एक बात ध्यान देने वाली यह है कि एक भाषिक व्यवस्था का उपयोग करने वाला व्यक्ति श्रोता और वक्ता दोनों ही रूपों में भाषा का प्रयोग करता है, मतलब वक्ता के रूप में जैसे वह अर्थ अथवा संकल्पना को ध्वनि रूप दे सकने की योग्यता रखता है वैसे ही श्रोता के रूप में वह ध्वनि से अर्थ तक पहुंचाने की योग्यता भी रखता है।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि संप्रेषण एक संवाद है, संपर्क है एक दूसरे से अपनी भावनाओं को बातों के रूप में पहुंचाने की कोशिश है। अक्सर हम अपनी भावनाओं को बोलकर, सुनकर, देखकर, पढ़कर, चित्र बनाकर एक दूसरे तक पहुंचाते हैं, इसकी प्रकार हम दूसरों की बातों को भी समझने की कोशिश करते हैं। मानव के आपसी क्रियाकलाप संप्रेषण का नाम दिया जा सकता है। बहरहाल संप्रेषण की अनेक व्याख्याएं दी जाती है, लेकिन इसके मूल अवधारणा में यह देखने को मिलता है कि संप्रेषण में अर्थों का आदान-प्रदान की जाता है। कहने का अर्थ यह है कि मानवीय क्रिया कलाप होने के साथ-साथ संप्रेषण एक प्रक्रिया भी है। संप्रेषण की इस प्रक्रिया में श्रोता तक वक्ता का संदेश पहुंचता है बदले में श्रोता अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत मनुष्य की संवेदना, मनुष्य का सोचना उसका संपूर्ण व्यवहार संप्रेषण के अंतर्गत शामिल होता है। यह वह आपने अलग-अलग आयाम में देखने को मिलता है|

अभिव्यक्ति के आधार पर संप्रेषण के विविध प्रकार देखने को मिलते हैं-

क. मौखिक संप्रेषण

ख. आंगिक संप्रेषण

ग. लिखित संप्रेषण

क. मौखिक संप्रेषण :-

संप्रेषण अधिकतर बोलकर ही किया जाता है। इस प्रक्रिया में भाषा मूल आधार एवं माध्यम है। मानव और मानवेत्तर समाज संप्रेषण की प्रक्रिया में सुबह उठते ही बोलने के साथ इसकी शुरुआत करता है। रात को सोने तक यह प्रक्रिया सदा चलते रहती है। बोलने की प्रक्रिया से मनुष्य के जीवन में सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव देखने को मिलते हैं। इसे हम कबीर की एक दोहे से अच्छी तरह समझ सकते हैं -

ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोए
औरन को शीतल करे आपहु शीतल होए।

बड़े बुजुर्ग कह रहे हैं कि बातचीत में हमें सोच समझ कर ऐसे शब्दों का प्रयोग करना चाहिए जिससे सुनने वाले का मन प्रसन्न हो जाए। हमें ऐसी वाणी का प्रयोग करना चाहिए जिसे सुनकर दूसरे का मन प्रसन्न हो और अपना भी मन प्रसन्न रहे।

मौखिक संप्रेषण के समय निम्नलिखित तीन बातों का ध्यान रखना आवश्यक होता है -

1. शब्दों और वाक्यों का चुनाव बहुत समझदारी से और सूझबूझ से करना आवश्यक होता है। वाक्यों के बोलने के उतार- चढ़ाव से भी संप्रेषण की प्रक्रिया में असर देखने को मिलता है। अतः शब्दों और वाक्यों का प्रयोग बहुत सावधानीपूर्वक करना होता है।

2. वक्ता अपनी आवाज़ को नम्र करके या जोर-जोर से बोलता है इसका भी असर श्रोता पर पड़ता है। आक्रामक तरीके से बोला गया वाक्य श्रोता पर ग़लत असर डालता है। एक दुकानदार और ग्राहक के संप्रेषण में आवाज़ का बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है। ग्राहक और दुकानदार का संबंध आवाज के उतार-चढ़ाव पर जुड़ा होता है। नौकरी के लिए दिया गया इंटरव्यू चयनकर्ताओं के मन -मस्तिष्क पर काफ़ी असर डालता है।

3. यदि हम कुछ बोलते हैं तो हमारे स्वर के ढंग के आधार पर सुनने वाला इसका अर्थ निकलता है। यदि हमने किसी को कहीं भेजा 'उधर जाओ'। हमारे 'उधर जाओ' बोलने के तरीके से सुनने वाला समझ जाएगा की हम उसे प्यार से भेज रहे हैं या उससे नाराज होकर। अगर हम स्पष्ट नहीं बोलेंगे तो सामने वाला हमारी बात नहीं समझ पाएगा और हमारी बात उस तक पहुंच नहीं पाएगी। और हमारे बोलने में हमारी आवाज़ का स्वर इतना ऊंचा ना हो जाए कि संदेश का संप्रेषण ग़लत ढंग से हो जाए।

ख. आंगिक संप्रेषण :-

मनुष्य मौखिक संप्रेषण के माध्यम से ही अपनी बात संप्रेषित नहीं करता बल्कि उसके बोलने की प्रक्रिया में उसके सारे अंग जैसे की आंख, हाथ पैर, कंधे सभी इस प्रक्रिया में

सहायता देते हैं। यह सारे अंग संप्रेषण में सहायता प्रदान करते हैं। इसे ही गैर शाब्दिक या अमौखिक संप्रेषण कहा जाता है। हमारी वेशभूषा और हमारा व्यक्तित्व शारीरिक संप्रेषण की शुरुआत में सहायता करते हैं। सरकारी नौकरी के साक्षात्कारों में साक्षात्कार कमरे में प्रवेश करते ही साक्षात्कार लेने वाला हमारी वेशभूषा से हमारे व्यक्तित्व की धारणा बना लेता है। साक्षात्कार देते समय हम उसके सामने खड़े कैसे होते हैं बैठते कैसे हैं इन सब बातों का काफी असर पड़ता है। अक्सर किसी कार्यालय में किसी के जाने पर अपनी बात रखते हुए किसी अधिकारी के टेबल को पकड़कर झुक जाने और झुके रहने पर व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है। हम जाने अनजाने में अपने व्यक्तित्व से लोगों को प्रभावित करते हैं। कार्यालय में अधिकारी से बातचीत करते समय शारीरिक अंगों के प्रभाव से व्यक्तित्व प्रभावित होता है, जैसे 'किसी अधिकारी ने कुछ प्रमाण पत्रों की मूल प्रति दिखाने के लिए कहता है तो हम मूल प्रति दिखाने से पहले अपने कंधे उचका देते हैं, मुंह बना देते हैं जैसे हम कह रहे हैं कि बड़े आए हैं प्रमाण पत्र देखने वाले' अपने इस व्यवहार से हम अपने बनते काम को भी बिगाड़ लेते हैं। अगर हम अपने शारीरिक अंगों के संतुलन को संतुलित रखकर बात करें या मुस्कुरा कर बात करें तो बिगड़ते काम भी बन जाते हैं।

शरीर के अंगों के प्रभाव से भी संप्रेषण की प्रक्रिया का पता चलता है। आंखें आंगिक संप्रेषण का सबसे सशक्त माध्यम मानी जाती हैं। जब कोई खुश होता है तो उसकी खुशी उसकी आंखों से दिखाई देती है। अक्सर हम या मुहावरा बार-बार पढ़ते हैं कि उसकी आंखें गुस्से से लाल थी। हम अपनी आंखों के माध्यम से अपनी प्रसन्नता या अप्रसन्नता दिखाने की कोशिश करते हैं बल्कि उसे दूसरों तक संप्रेषित भी करते हैं।

ग. लिखित संप्रेषण :-

जिस तरह हम बोलकर और देखकर संप्रेषण की क्रिया करते हैं उसी तरह हम अपनी अभिव्यक्ति को लिखकर भी दूसरों तक पहुंचाने की कोशिश करते हैं। इस लिखित संप्रेषण में कहानी, कविता, नाटक, उपन्यास आदि रूपों में अभिव्यक्ति पाठकों तक पहुंचती है। इसलिए लिखना भी एक कला के अंतर्गत आता है। योजना बद्ध तरीके से लिखकर अपनी बात को सही तरीके से लोगों तक संप्रेषित कर सकते हैं। लिखित संप्रेषण में लेखन कार्य के लिए निम्नलिखित पांच मुद्दों को ध्यान में रखना चाहिए। क्या, क्यों, कब, कौन और कैसे। इन 5 मुद्दों को ध्यान में रखकर लिखने से हम अपने संदेश को सही तरीके से पाठकों (प्राप्तकर्ता) तक पहुंचा सकते हैं।

1. लिखित संप्रेषण में अभी अपनी अभिव्यक्ति को लिखते समय सबसे महत्वपूर्ण बात यह ध्यान में रखनी चाहिए कि हम जो संदेश दे रहे हैं अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम से वह क्या है ? अभिव्यक्ति का माध्यम चाहे पत्र हो, रिपोर्ट, टिप्पणी, लेख या कहानी कुछ भी लिखने से पहले यह तय कर लेना चाहिए कि हमें लिखना क्या है। इस बात को निर्धारित कर लेना चाहिए कि हमारे विषय का संदेश क्या है।

2. लिखित संप्रेषण में विषय तय हो जाने के बाद अभिव्यक्ति का उद्देश्य तय कर लेना चाहिए। प्राप्तकर्ता को जो हम संदेश दे रहे हैं वह क्यों दे रहे हैं इन सब बातों का गहन विचार कर लेना चाहिए, उद्देश्य सर्वोपरि होना चाहिए।

3. लिखितसंप्रेषण में प्राप्तकर्ता का रूप जान लेना चाहिए कि जिसे हम संदेश दे रहे हैं वह कौन है यह पता चलते ही संदेश देने की शैली में परिवर्तन हो जाता है। यदि हम कोई पत्र अपनी मां को लिख रहे हैं तो उसकी शैली अलग होगी किसी अधिकारी या दोस्त को लिख रहे हैं तो शैली में परिवर्तन हो जाता है। औपचारिक और अनौपचारिकता की श्रेणी में बदलाव आ जाता है।

4. लिखित संप्रेषण में समय का बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है। हम अपने लिखित माध्यम के द्वारा अभिव्यक्ति करते समय दिन और तारीख जरूर लिखें। विशेषकर पत्र लेखन में या कार्यालय का काम करते समय इस विधि का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

5. लिखित संप्रेषण में लेखन का सारा भार इस बात पर तय होता है कि हम अभिव्यक्ति कैसे कर रहे हैं। लिखित संप्रेषण में भाषा की पकड़ और लेखन कौशल, एक तरह से इन दोनों की परीक्षा हो जाती है। पात्रों के अनुकूल भाषा भी होनी चाहिए कहने का मतलब यह है कि हम अपनी अभिव्यक्ति लेखन के माध्यम से कैसे कर रहे हैं और क्या लिख रहे हैं इसके अनुसार हमारी भाषा का निर्धारण होना चाहिए। जैसे मां को लिखे पत्र और किसी कार्यालय में अधिकारी को लिखे पत्र की भाषा में स्पष्ट रूप से अंतर देखने को मिलेगा।

५.४ मानवीय और मानवेतर भाषा

दुनिया में अलग-अलग धर्म और जाति के लोग में रहते हैं। लेकिन कोई भी मानव समाज ऐसा नहीं होगा जिसके पास संप्रेषण माध्यम के रूप में भाषा न हो। भाषा एक तरह से समाज और सामाजिक संस्कृति का एक अभिन्न अंग के रूप में जाना जाता है। इसी भाषा के माध्यम से मानव सामाजिक व्यवस्था का एक अंग बनकर समाज में रहता है। समाज में रहते हुए अपनी छोटी बड़ी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति अन्य सदस्यों पर निर्भर रहते हुए उनसे संपर्क स्थापित करते हुए पूर्ण करता है। बहरहाल संप्रेषण में संपर्क स्थापित करने के लिए मध्य और भी तरीके के हैं जैसे सांकेतिक भाषा, चिन्हों या चित्रों द्वारा विचारों का प्रकृटीकारण इत्यादि। लेकिन इन सब में संप्रेषण व्यवस्था, सबसे अधिक, सशक्त प्रभावशाली और सक्षम व्यवस्था मानव भाषा के रूप में सामने आती है। इस भाषा के माध्यम से मनुष्य अपने विचारों को एक सुव्यवस्थित ध्वनिरूप में व्यवस्थित करता है। समाज में मानव स्वभाव से ही सोचने समझने वाला एक विचारशील प्राणी के रूप में सबके सामने आता है जो हर समय नए-नए विचारों और आविष्कारों को जन्म देते रहता है।

वास्तव में भाषा के अलावा और कोई ऐसा साधन नहीं है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचारों को दूसरों पर वाली भांति अभिव्यक्त कर सके और दूसरे के विचारों को रुपए में सही तरीके से समझ सके। मनुष्य का सारा कार्य उसके विचारों की उत्पत्ति होती है। संसार का अधिकतर व्यवहार बोलचाल अथवा लिखा-पढ़ी से ही चलता है। इसलिए भाषा संसार के व्यवहार का मूल आधार है। भाषा के माध्यम से ही मानव अपने विचारों को एक दूसरे के विचारों में संप्रेषित करता है। दूसरे की अभिव्यक्ति से अवगत होता है। इस अभिव्यक्ति के तरीकों में गूंगे- बहरे मनुष्य अपने विचार संकेत माध्यमों से प्रकट करते हैं। जैसे छोटा बच्चा

केवल रोकर अपनी इच्छा बताने की कोशिश करता है, इस प्रकार मनुष्य के विचार भी कभी-कभी उसकी मुख की चेष्टाओं को देखकर पता चलता है। कई बार तो लोग बिना बोले ही संकेतों के द्वारा बातचीत करते हैं। इस प्रकार के संकेतों के माध्यम से एक त्रुटि यह रह जाती है कि हम विचार को ठीक-ठीक प्रकट और ठीक-ठीक समझ नहीं पाते हैं। इसी प्रकार मानवेतर समाज में पशु पक्षियों इत्यादि में जो बोली बोलते हैं, उससे उनके सुख-दुख और भय आदि मनोविकारों के सिवाय और कोई बात नहीं जानी जा सकती है। केवल मनुष्य की भाषा ही भली -भांति समझ में आती है। इसलिए मनुष्य की भाषा को व्यक्त भाषा कहते हैं। और पशु पक्षियों की भाषा को अव्यक्त भाषा कहते हैं।

मनुष्य की यह भाषा कभी भी स्थाई नहीं रहती उसमें हमेशा परिवर्तन होता रहता है। विचारकों का अनुमान है कि कोई भी प्रचलित भाषा अपने जीवन काल में 1000 वर्ष से अधिक समय में एक जैसी नहीं रह पाती है। जैसे हम आजकल जिस प्रकार की हिंदी का प्रयोग करते हैं वह हिंदी हमारे तीन-चार पीढ़ियों पहले इसी रूप में बोली जाती होगी यह संभव नहीं। महाराजा राणा प्रताप के समय बोली जाने वाली हिंदी जयशंकर प्रसाद के समय बोली जाने वाली हिंदी और वर्तमान समय में बोले जाने वाली हिंदी में काफी अंतर देखने को मिलेगा। यह परिवर्तन एकाएक नहीं होता इसमें धीरे-धीरे परिवर्तन होता रहता है और हमें पता भी नहीं चलता और अंत में इन परिवर्तनों के कारण नई-नई भाषाएं उत्पन्न हो जाती हैं। मानवेतर समाज में पशु-पक्षी भी अपने भावों विचारों और सूचनाओं का आदान-प्रदान करते हैं। लेकिन जैसे ही भाषा की बात ठहरती है मनुष्य के अलावा दूसरे जानवरों के संबंध में ही मन में विचार आता है कि उनके पास भाषा जैसे कोई चीज है या नहीं सामान्यतः यही मानकर चलते हैं जानवरों के पास भी भाषा होती है। अतः दूसरे जानवरों के पास भी भाषा है। एक भाषा वैज्ञानिक नजरिए से यह तो नहीं कहा जा सकता है कि दूसरे जानवरों के पास भाषा है बल्कि हम यह तो कह ही सकते हैं कि उनके पास भाषा जैसी छोटी-मोटी व्यवस्था या मध्यम तो है ही, जिसके माध्यम से वे बहुत ही सीमित मात्रा में अपने भावों की अभिव्यक्ति कर पाते हैं। मनुष्य के अलावा दूसरे जानवर विचार कर पाते हो इसकी संभावना बहुत कम देखने को मिलती है और सूचनाओं को बनाना और उनका आदान-प्रदान करना तो लगभग असंभव प्रतीत होता है।

५.५ निष्कर्ष

भाषा हमारे संप्रेषण का माध्यम ही नहीं बल्कि हमारे भावबोध का साधन भी होता है। हम भाषा के माध्यम से ही सोचते हैं और भाषा के माध्यम से ही अपने विचारों को लोगों तक संप्रेषित करने की कोशिश करते हैं। वास्तव में हमारा सारा का सारा चिंतन एक तरह से भाषा का ही चिंतन होता है। मनुष्य के मन की सृजनात्मक शक्ति की अनुपम देन है कि यह भाषा ही बाहरी जगत और हमारे भावबोध के बीच एक सेतु का कार्य करती है। मानव समाज की भाषा और मानवेतर समाज की भाषा पर विचार करने पर यह पता चलता है कि मानव भाषा बहुत जटिल है जबकि दूसरे जानवरों की भाषा या भाषा जैसी वस्तु जटिल के बजाय सरल होती है, क्योंकि मानव की भाषा एक बहुत सारी व्यवस्थाओं के तहत आती है। दूसरी ओर जानवरों की भाषा में कोई स्टार नहीं होता बल्कि सीमित संख्या में संकेत भर करते हैं।

५.६ प्रश्नोत्तर

क. निम्नलिखित दीर्घोत्तरीय प्रश्नों के उत्तर लिखिए।

१) भाषा और संप्रेषण के आपसी संबंध को स्पष्ट कीजिए

२) संप्रेषण की प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिए।

३) मानव और मानवेतर समाज के संप्रेषण के तरीकों को स्पष्ट कीजिए।

४) संप्रेषण के विभिन्न प्रकारों को स्पष्ट कीजिए।

ख. टिप्पणी लिखिए।

१) मानव भाषा और संप्रेषण

२) संप्रेषण के स्तर

३) संप्रेषण के प्रयोजन

४) लिखित संप्रेषण

५) मौखिक संप्रेषण

६) आंगिक संप्रेषण

❖❖❖❖

६

स्वन विज्ञान

इकाई का स्वरूप :

६.१ इकाई का उद्देश्य
६.२ प्रस्तावना
६.३ स्वन वर्गीकरण, स्वन विज्ञान की परिभाषा, स्वरूप
६.४ वाग अवयव और उनके कार्य
६.५ स्वनिम की विशेषताएँ
६.६ स्वनिम एवं संस्वन
६.७ स्वनिम के भेद
६.७.१ खंड्य स्वनिम
६.७.२ खंड्येतर स्वनिम
६.८ सारांश
६.९ लघुत्तरीय प्रश्न
६.१० दीर्घोत्तरी प्रश्न
६.११ संदर्भ ग्रंथ

६.१ इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन के बाद निम्नलिखित मुद्दों से आपका परिचय होगा।

i) स्वन वर्गीकरण स्वन की परिभाषा और उसका स्वरूप स्पष्ट होगा।

ii) वाग अवयव और उनके कार्य से परिचय होगा।

iii) स्वनिम की विशेषताओं से अवगत हो पाएँगे।

iv) स्वनिम के भेद से परिचय प्राप्त होगा।

६.२ प्रस्तावना

स्वन या स्वनिम विज्ञान भाषा विज्ञान की एक शाखा है जिसके अध्ययन की इकाई 'स्वनिम' है। 'स्वनिम - रूपिम - शब्द (पद) - पदबंध - उपवाक्य - वाक्य - प्रोक्ति भाषा विज्ञान की विभिन्न इकाईयाँ है जो परस्पर सहसंबंधित होकर 'अर्थ' के संप्रेषण का कार्य करती है। अतः इस खंड में जहाँ एक ओर स्वनिम विज्ञान की केंद्रीय विषय - वस्तु 'स्वनिम' का

विवेचन किया गया है वहीं दूसरी ओर भाषा की अन्य इकाईयों से 'स्वनिम' के संबंध को भी स्पष्ट करते हुए इससे तकनीकि अनुप्रयोगात्मक पक्ष को भी उद्धाटित किया गया है।

६.३ स्वन वर्गीकरण, स्वन विज्ञान की परिभाषा, स्वरूप

स्वन वर्गीकरण

किसी भी भाषा को बोलते समय जो असंख्य शब्द उच्चरित होते है वे स्वन या ध्वनि कहलाते हैं । इन असंख्य शब्दों को स्वन में वर्गीकरण करना या किसी भी प्रकार से आकलन करना कठिन है। फिर भी स्वन के परिपूर्ण अध्ययन की दृष्टी से इनको निम्न भागों में वर्गीकृत किया गया है जो इस प्रकार है - श्रवणीयता (सुनने की क्षमता), अनुनादिता (कंपन या गूँज), स्थान, करण एवं प्रयत्न आदि के आधार पर स्वन को वर्गीकृत कर समझने का प्रयास किया गया है |

श्रवणीयता

स्वन या ध्वनि की क्रिया सूक्षम और वृहत रूप से श्रवणीयता पर निर्भर है। भाषा प्रयोग के लिए कम से कम दो लोगों का होना आवश्यक है । एक बोलने वाला और दूसरा सुनने वाला । और यह भी सच है कि सुनने वाले को सभी ध्वनियाँ एक जैसी सुनाई नहीं देती । बोलने वाला कभी बहुत जोर से बोलता है तो कभी बहुत धीरे इसलिए जोर से या बड़ी आवाज में बोलने पर ध्वनियाँ बहुत दूर तक और देर तक सुनाई पड़ती हैं,और धीरे बोलने पर बहुत कम समय के लिए कुछ ही दूरी तक सुनाई पड़ती हैं । अध्ययन की सुविधा के लिए श्रवणीयता के आधार पर स्वन को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है - स्वर, व्यंजन एवं अन्तःस्थ ।

अनुनादिता

मानव मुख से उच्चरित कुछ ध्वनियाँ ऐसी होती हैं जिनके उच्चारण में कंपन या गूँज अधिक होती है । इन ध्वनियों अनुनादित ध्वनि कहते हैं । इनमें निम्न वर्णों का समावेश है | जैसे - ङ्, ञ्, न्, म्, अ, ऊ, आ, य, र, ल, व आदि। इसके विपरीत जिन ध्वनियों के उच्चारण में गूँज नहीं के बराबर होती है, उन्हें निरनुनादित ध्वनि कहते हैं। जैसे - त्, ट् आदि वर्ण।

श्वास - स्थान या जगह

स्वन उत्पत्ति के समय यह बोलने वाले पर निर्भर करता है कि वह किस प्रकार बोल रहा है यदि वह श्वास को रोककर बोलता है तो उसके उच्चारण में अवरोध उत्पन्न होता है, उसे स्थान या जगह कहते हैं । क्योंकि विभिन्न ध्वनियों को अलग अलग स्थानों से उच्चरित करना पड़ता है । ऐसे में किसी शब्द उच्चारण को बहुत कम स्थान मिलता है और किसी शब्द उच्चारण को अधिक |

(उच्चारण की प्रक्रिया) करण

उच्चारण की प्रक्रिया में जो वागीन्द्रियाँ प्रयोग में आती है, वे करण कहलाती हैं । उच्चारण प्रक्रिया से तात्पर्य है कि ध्वनियों के उच्चारण के समय तीन वागेंद्रियों का प्रयोग प्रमुख रूप से होता है जिन्हें करण कहते है |करण मुख्यतः - जिह्वा (अपने सभी भागों के साथ), ओष्ठ

(जबड़ा सहित) तथा स्वरतंत्रियाँ। जिन्हें शब्द उच्चारण के आधार पर आवश्यकतानुसार ऊपर उठाया जा सकता है या फिर नीचे लाया जा सकता है। अनुनासिक वर्णों के उच्चारण में सहायक होने के कारण कोमल तालु भी करण में गिना जाता है।

प्रयत्न

व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण के समय वाग्यंत्र के अवयवों के प्रयोग में जो विशेष सजगता बरतनी पड़ती है, उसे ही प्रयत्न कहते हैं। ये प्रयत्न भी दो प्रकार से घटित होते हैं – एक आंतरिक और दूसरा बाह्य। ओष्ठ से लेकर कंठ तक मुख-विवर का आंतरिक भाग है और कंठ से नीचे विशेषकर स्वरतंत्री बाहरी भाग कहलाता है।

भाषा की लघुत्तम इकाई 'स्वन' है। इसे ध्वनि का नाम भी दिया जाता है। किसी भाषा विशेष में पाए जाने वाले स्वनिमों और उसकी व्यवस्था का विशेष अध्ययन स्वनिम विज्ञान है। दूसरे शब्दों में स्वनिम विज्ञान भाषा विज्ञान की वह शाखा है जिसमें भाषा की लघुत्तम व्यवस्थापक इकाई 'स्वनिम' का अध्ययन विश्लेषण किया जाता है। भाषाविज्ञान की विभिन्न शाखाओंमें भाषा के विभिन्न स्तरों का अध्ययन किया जाता है। इसे यूँ भी कहा जा सकता है कि भाषा की लघुत्तम इकाई 'स्वन' है। ध्वनि के अभाव में भाषा की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। भाषा विज्ञान में स्वन के अध्ययन संदर्भ को 'स्वन विज्ञान' की संज्ञा दी जाती है।

ध्वनि शब्द ध्वन् धातु में इण् (इ) प्रत्यय के योग से बना है। भाषा विज्ञान के गंभीर अध्ययन में ध्वनिविज्ञान एक महत्त्वपूर्ण शाखा बन गई है। इसके लिए ध्वनिशास्त्र, ध्वन्यालोचन, स्वन विज्ञान, स्वनिति आदि नाम दिए गए है। अंग्रेजी में उसके लिए Phonetics और Phonology शब्दों का प्रयोग होता है। इन दोनों शब्दों की निर्मिति ग्रीक के 'Phone' से है।

भाषा विज्ञान की विभिन्न शाखाओंमें भाषा के विभिन्न स्तरों का अध्ययन किया जाता है। उनके सापेक्ष स्वनिम विज्ञान की स्थिति इस प्रकार है।

भाषा के स्तर (क्रमशः बढ़ते क्रम में)	भाषा विज्ञान की शाखाएँ
स्वनिम	स्वनिम विज्ञान
रूपिम शब्द (पद)	रूप विज्ञान
पद बंध उपवाक्य वाक्य	वाक्यविज्ञान
प्रोक्ति	प्रोक्ति विश्लेषण

इसके अतिरिक्त 'अर्थ' पर विचार करने के लिए भाषा विज्ञान की एक शाखा 'अर्थ विज्ञान' भी है जो भाषा संरचना के उपर्युक्त सभी स्तरों से संबंधित होती है। रूपिम से लेकर प्रोक्ति

तक सभी भाषिक स्तरों पर अर्थ पाया जाता है और उसी के अनुरूप विश्लेषण संबंधी कार्य किया जाता है।

'स्वनिम' अर्थहीन (किन्तु अर्थभेदक) होते हैं। इसलिए इस स्तर पर अर्थ की कोई विशेष भूमिका नहीं होती। इसमें अर्थ केवल बड़ी इकाईयों के निर्मित होने या न होने के निर्धारण को प्रभावित करता है।

परिभाषा तथा स्वरूप :

भाषा का मूल रूप उसका वाचिक (बोला गया) रूप है। वाचिक भाषा में मानव मुख से उच्चारित जिन ध्वनियों का प्रयोग किया जाता है उन्हें 'स्वन' (Phone) कहते है।

किसी बोले गए वाक्य या शब्द के लिए बोले जा सकने वाले लघुतम खंड 'स्वन' हैं। स्वनों का अध्ययन स्वन विज्ञान में किया जाता है। स्वनिम विज्ञान में किसी भाषा विशेष के स्वनों का विश्लेषण करते हुए 'स्वनिमों' और 'उपस्वनों' की व्यवस्था का विश्लेषण किया जाता है। साथ ही भाषा विज्ञान की यह शाखा स्वनिमों के प्रकार्य का विवेचन भी करती है। स्वनिम विज्ञान के बारे में डॉ. भोलानाथ तिवारी का कहना है, "स्वनिम विज्ञान वह विज्ञान है जिनमें किसी भाषा में प्रयुक्त स्वनिमों (ध्वनिग्रामों) तथा उनसे संबंद्ध पूरी व्यवस्था पर विचार करते हैं। इसके अंतर्गत स्वनिम (ध्वनिग्राम) तथा उपस्वन (संध्वनि) का निर्धारण, उपस्वन का वितरण, स्वर और व्यंजन स्वनिमों का उस भाषा में प्रयुक्त संयोग एवं अनुक्रम प्राप्त खंड्येतर स्वनिमों (बलाघात, दीर्घता, अनुनासिकता, संहिता, अनुतान) की व्यवस्था के रूप में मिलने पर घटित होने वाले स्वनिमिक परिवर्तन आदि स्वनिमिक व्यवस्था से संबंद्ध सारी बातें आती है।" (भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिंदी भाषा)

भाषा विज्ञान परिभाषा कोश (खंडन) के अनुसार किसी भाषा के सार्थक स्वनों का व्यतिरेक और विरोध के आधार पर अध्ययन तथा उसके वितरण और व्यवस्था का विश्लेषण 'स्वनिम विज्ञान' है।

इसी प्रकार ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में इसे “The system of contrastiv relationships among the Speech Sounds that constitute the fundamental components of a language.” बताया गया है, अर्थात यह वाक् ध्वनियों के बीच प्राप्त व्यतिरेकी संबंधो की उस व्यवस्था का अध्ययन है, जिसके द्वारा किसी भाषा के आधारभूत घटकों का निर्माण किया जाता है।

कोलिंस इंग्लिश डिक्शनरी में संक्षेप में इसको -

“The study of the Sound System of a language or of languages in general” कहते हुए परिभाषित किया गया है। अर्थात यह किसी भाषा का ध्वनि व्यवस्था या सामान्य शब्दों में भाषाओं की ध्वनि व्यवस्था का अध्ययन है।

"किसी भाषा या बोली में स्वनिम (Phoneme) उच्चारित ध्वनि की सबसे छोटी इकाई है। स्वनिम के लिए ध्वनिग्राम, स्वनग्राम आदि शब्द भी प्रयुक्त होते है।"

अंग्रेजी में इसका पर्यायी शब्द फोनीम (Phoneme) है। Phoneme के लिए प्रयुक्त होने वाला 'स्वनिम' शब्द 'ध्वनिग्राम' की अपेक्षा कहीं अधिक नया है, किन्तु आजकल इसका ही प्रयोग चल रहा है।

स्वनिम के स्वरूप के संदर्भ में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। विभिन्न विद्वानों ने इसे भिन्न - भिन्न विषयों से सम्बंधित माना है। ब्लूमफील्ड और डैनियल सापीर इसे मनो-वैज्ञानिक इकाई मानते हैं। डब्ल्यू. एफ. टवोडल स्वनिम को अमूर्त काल्पनिक इकाई मानते हैं। स्वन या ध्वनि - परिवर्तन से सदा अर्थ - परिवर्तन नहीं होता है, जबकि स्वनिम - परिवर्तन से अर्थ परिवर्तन निश्चित है।

स्वनिम की अवधारणा और पहचान :

स्वनिम किसी भाषा की लघुतम अर्थ भेदक इकाई है। इसकी सता अमूर्त होती है और यह मानव मस्तिष्क में होता है। मानव मस्तिष्क में स्वनिम केवल संकल्पनात्मक रूप में रहता है और उसी के आधार पर मनुष्य उसका उपयोग बार - बार भाषा उत्पादन (अभिव्यक्ति) और बोधन के लिए करता है। इसी कारण एक ही स्वनिम का हजारों - लाखों बार व्यवहार संभव हो पाता है। उदाहरण के लिए हमारे मस्तिष्क में 'क', 'म', 'ल' और 'अ' स्वनिम है। इनके आधार पर हम निम्नलिखित शब्द निर्मित कर सकते हैं। -

कमल, कलम, कल, कम, मल आदि। -

इनमें 'क' का प्रयोग ४ बार हुआ है जो स्वन या ध्वनियाँ हैं। इन्हें क१, क२, क३ और क४ से व्यक्त किया जा सकता है। किंतु इनके मूल में एक ही इकाई ।क। है जो इनका स्वनिम है। यही बात 'म', 'ल' और 'अ' के बारे में लागू होती है। स्वनिमों के दो स्लैश के बीच ('।।') में प्रदर्शित किया जाता है।

किसी नई भाषा के स्वनिमों की पहचान करना एक कठिन और श्रमसाह्य कार्य है। इसके लिए उस भाषा के वार्तालापों या संवादों का रिकार्ड करना पडता है। इसके पश्चात रिकार्ड की हुई सामग्री में से एक - एक शब्द को अलग अलग चिन्हित किया जाता है। तदुपरांत प्रत्येक शब्द को भिन्न संदर्भो में बार - बार सुनकर उसमें प्रयुक्त स्वनिमों का अनुमान लगाया जाता है। फिर उन स्वनिमों का दूसरे शब्दों में प्रयोग किस प्रकार हुआ है इसका परीक्षण किया जाता है। इस प्रकार के विस्तृत अध्ययन द्वारा स्वनिमों की पहचान की जाती है।

६.४ वाग अवयव और उनके कार्य

शरीर के जिन अवयवों के सहयोग से ध्वनि का उत्पादन संभव होता है उसके समूह को वाग्यंत्र कहते हैं। यह परिभाषा आंशिक रूप से ही तर्कसंगत लगती हैं। क्योंकि मनुष्य अपनी विभिन्न अंगुलियों के माध्यम से तबले, हारमोनियम और सितार आदि से ध्वनि उत्पादन करता है।

यहाँ ज्ञातव्य है कि ध्वनि - उत्पादन में शरीर के श्वसन तंत्र और पाचन - तंत्र के अनेक भाग विशेष सहयोगी होते हैं। ध्वनि - उत्पादक के संदर्भ में इन अंगों की, अपरिहार्य रूप से चर्चा

की जाती है । श्वसन नलिका और भोजन - नलिका ध्वनि - उत्पादन में विशेष भूमिका निभाती हैं । ये दोनों नलिकाएँ ऊपर और नीचे अवश्य है, किन्तु कंठ-स्थल पर दोनों एक - दूसरे से मिली हुई है। भोजन नलिका मुख से भेजे गए भोजन को अमाशय की ओर ले जाती |

है । कंठ के कुछ ऊपर तक ध्वनि उत्पादक निश्वास का मार्ग और भोजन मार्ग एक ही होता है । उसके पश्चात अलग होता है । श्वास नलिका नाक से चलकर फेफड़े तक जाती है । श्वास मार्ग ध्वनि - उत्पादक प्रक्रिया में सर्वाधिक सहयोगी होता है । ध्वनि - उत्पादन में फेफड़े से चली वायु कभी मुख मार्ग से बाहर आती तो कभी नासिका के मार्ग से ।

इस प्रकार विभिन्न ध्वनियों का उत्पादन होता है । ध्वनि उत्पादन में सहयोगी अंग निम्नलिखित है ।

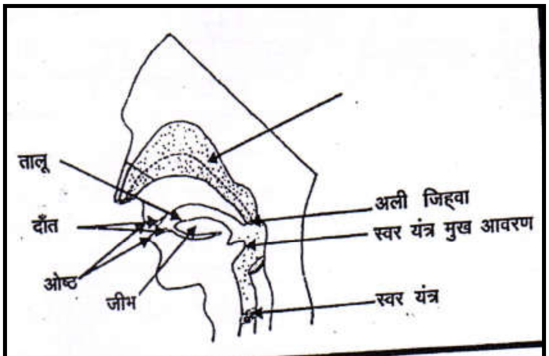

ध्वनि-यंत्र

१. फेफड़े (Lungs) :

प्राणियों में श्वसन प्रक्रिया के मूलाधार फेफड़े हैं । मनुष्य के जीवन पर्यंत श्वसन प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती हैं । निद्रावस्था में शरीर के अधिकांश भाग शिथिल हो जाते हैं, किन्तु श्वसन प्रक्रिया फेफड़े के सहारे चलते रहते है । इस प्रक्रिया के अवरोध होने पर जीवन का अन्त संभावित होता है । श्वसन में शुद्ध वायु अर्थात ऑक्सीजन ग्रहण करते हैं और निःश्वास में दूषित वायु अर्थात कार्बन डाइ ऑक्साइड निकलती है । इसे प्रक्रिया में जीवन के लिए आवश्यक ऑक्सीजन की उपलब्धि होती रहती है । यह भी नितान्त सत्य है कि यदि मनुष्य को कुछ देर तक ऑक्सीजन न मिले तो मृत्यु निश्चित है ।

मनुष्य की ध्वनि - उत्पादन प्रक्रिया में निःश्वास का ही उपयोग होता है । इसके विपरीत श्वास लेते हुए एक मात्र ध्वनि का उत्पादन होता है जिसे 'क्लिक' ध्वनि कहते हैं । इसमें दोनों होठों को मिलाकर वायु अन्दर खींचते हुए ध्वनि उत्पन्न की जाती है । माँ जब अपनी संतान को प्यार से चुम्बन लेती है तो ऐसी ही ध्वनि का उत्पादन होता है । श्वसन प्रक्रिया में बाहर निकलने वाली दूषित वायू से ही ध्वनि की उत्पत्ति होती है । यह निरर्थक वायु मनुष्य जाति में परम उपयोगी सिद्ध हुई है । मनुष्य की भाषा का अस्तित्व ही श्वसन के निरर्थक तत्त्व (बाई - प्रोडक्ट) पर आधारित है । भाषा निश्चय ही मनुष्य की उन्नति एवं विकास का परम आधार है । फेफड़े से श्वास - निःश्वास की प्रक्रिया चलती रहती है । जिससे ध्वनि - उत्पादन

का क्रम चलता रहता है। माना कि फेफड़े का कार्य रक्त शुद्धिकरण के लिए ऑक्सीजन ग्रहण करना तथा कार्बनडाइऑक्साइड बाहर निकालना है, किन्तु इसी क्रम में ध्वनि उत्पत्ति भी सम्भव है। इस प्रकार फेफड़े ध्वनि - उत्पादन के प्रमुख अंग हैं।

२. स्वर - यंत्र (Laryans) :

फेफड़े के कुछ ऊपर श्वास नलिका में स्वर - यंत्र नामक विशेष वाग्यंत्र होता है। फेफड़े से निकली वायु स्वर - यंत्र से होकर ही बाहर आती है। स्वर-यंत्र में दो मांसल झिल्लियाँ होती हैं जिन्हें स्वर-यंत्री कहते हैं। स्वर-तंत्रियाँ आवश्यकतानुसार आगे या पीछे खिसक कर स्वर-यंत्र के मुख को छोटा या बड़ा आकार प्रदान करती है। इन झिल्लियों के माध्यम से स्वर-यंत्र के मुख की अनेक आकृतियाँ बनती हैं। किन्तु इन्हें मुख्यतः तीन रूपों में विभक्त करते हैं।

(क) स्वर - यंत्र की प्रथम स्थिति जिसमें स्वर तंत्रियाँ शिथिल रूप से अर्थात् यथावत पड़ी रहती हैं। दोनों झिल्लियों के मध्य पर्याप्त स्थान होता है। श्वास और निःश्वास की वायु, अनवरत चलती रहती है। झिल्लियाँ खुली रहने के कारण निः श्वास की वायु स्वर-यंत्र में बिना घर्षण के बाहर आ जाती है अतः अघोष ध्वनियों का उत्पादन होता है।

(ख) जब स्वर - यंत्र की तंत्रियाँ आपस में निकट आकर लगभग सट जाती हैं तो फेफड़े से चली वायु तंत्री से घर्षण कर बाहर निकलती है, जिससे तंत्रियों में कम्पन होता है। इस स्थिति में घोष या संघर्ष ध्वनियों का उत्पादन होता हैं।

(ग) स्वर - यंत्र की दोनों तंत्रियाँ एक - दूसरे से सटी हुई हों और कोई एक कोना खुला हुआ हो तो निःश्वास की वायु फुस्-फुस् की हल्की ध्वनि के साथ आती हैं। इसलिए इसे फुस्-फुस् ध्वनि कहते हैं। जब एक व्यक्ति किसी के कान के निकट मुँह कर धीरे-धीरे ऐसे कहने का प्रयत्न करता है कि दूसरे अन्य को सुनाई न दे तो ऐसी ध्वनि का उत्पादन होता है। स्वर-यंत्र निश्चय ही ध्वनि उत्पादन क्रिया का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। दो कोमल तंत्रियों से थोड़ा और बहुत और बहुत विस्तृत आकार धारण कर विविध ध्वनियों की उत्पत्ति होती है। जिस प्रकार वंशी के कुछ एक सीमित छिद्र को बन्द - खोलकर विविध ध्वनियों का उत्पादन किया जाता है।

स्वर-यंत्र ध्वनि-उत्पादन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग है। इसके साथ ही जीवन रक्षक अंग भी है। स्वर-यंत्र के ऊपर लगभग कंठ-स्थल पर श्वास नलिका और भोजन नलिका का चौराहा है। यहाँ से श्वास नलिका, भोजन नलिका, मुख विवर, नासिका - विवर, चार मार्ग चारों दिशाओंमें जाते हैं। श्वास नलिका और भोजन नलिका चौराहा हैं। श्वास - निःश्वास और भोजन के समुचित मार्ग क्रमशः नलिका और भोजन नलिका में पहुँचाने का कार्य स्वर-यंत्र मुख आवरण करता रहता है। ध्वनि उत्पादन के समय सिमट कर श्वास मार्ग खोलना और भोजन ग्रहण के समय इस मार्ग को बंद करते रहने का दायित्व इस अंग पर रहता है। जब हम भोजन करते समय बात करते जाते है, तो इस अंग के लिए एक कठिन परीक्षा की घड़ी रहती है। यदि स्वर यंत्र मुख आवरण थोड़ा भी चूक जाए और भोजन का एक भी कण इस आवरण से आगे बढ़ जाए तो संकट की घड़ी आ जाती है। ऐसे में मस्तिष्क के निर्देश पर स्वर यंत्र की दोनो झिल्लियाँ तुरंत ही एक दूसरे से मिलकर फेफड़े का मार्ग बंद कर देती हैं।

अगले ही पल मस्तिष्क के निर्देश पर दोनों फेफड़ों पर तेज दबाव पड़ता है। फेफड़े से वायु का तेज प्रवाह स्वर यंत्र को खोलता हुआ बाहर जाता है। इस वायु के तेज प्रवाह में भोजन का कण स्वर-यंत्र के ऊपर से ऊपर उठकर बाहर आ जाता है। वायु का प्रवाह इतना तेज होता है कि भोजन - कण प्रश्वास के साथ नाक से बाहर आ जाता है। इस प्रक्रिया से जीवन रक्षा होती है।

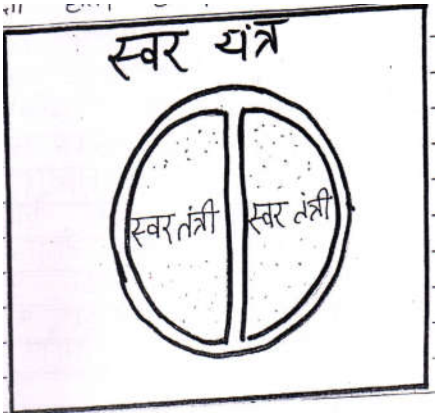

३.स्वर - यंत्र मुख आवरण (Epiglottis) :

स्वर - यंत्र की सुरक्षा हेतु इसके मुख से ऊपर एक मांसल भाग है। ध्वनि - उत्पादन के समय यह भाग सिमट कर वायु को बाहर निकलने के लिए समुचित मार्ग प्रदान करता है। किन्तु जब भोजन या पेय पदार्थ ग्रहण करते हैं तब यह मांसल आवरण बढ़कर श्वसन मार्ग को ढँक लेते हैं। इससे ग्रहण किया गया खाद्य या पेय पदार्थ सीधे भोजन नलिका में जाता है। यह निर्विवाद सत्य है कि यदि स्वर यंत्र आवरण की चूक के पश्चात् स्वर - यंत्र से भी चूक हो जाए और खाद्य पदार्थ का टुकड़ा भी फेफड़े में पहुँच जाए तो प्राणांत संभावित है इस प्रकार स्वर - यंत्र मुख आवरण जहाँ ध्वनि - उत्पादन का एक सहयोगी अंग है वहीं महत्त्वपूर्ण जीवन रक्षक अंग भी हैं।

४. अलिजिव्हा (Iwala) :

मुख विवर, नासिका विवर, श्वास नलिका और भोजन नलिका के ठीक ऊपर लटकता हुआ मांसल अंग होता है, जिसे अलिजिव्हा, कौवा या घंटी कहते हैं। यह मांसल अंश ध्वनि उत्पादन के समय आवश्यकतानुसार मुख-विवर के मार्ग और नासिका विवर के मार्ग को खोलता व बंद करता है। दोनों मार्गों के अवरोध में अलिजिव्हा अपने स्वरुप घटाता बढ़ाता है। अलिजिव्हा की अवरोधक प्रक्रिया में तीन स्थितियाँ सामने आती है -

प्रथम अवस्था स्वाभाविक अवस्था है जिसका संबंध जीवन - यापन के लिए श्वास - निःश्वास की प्रक्रिया से होता है। ऐसे में अलिजिव्हा शिथिल होकर नीचे लटककर मुख मार्ग को अवरूद्ध कर देती है। मुँह भी बंद होता हैं। सहज श्वसन क्रिया इसी अवस्था में होती है।

प्रथम अवस्था

द्वितीय अवस्था में अलिजिव्हा आगे बढ़कर नासिका मार्ग को पूर्ण रूप से अवरूद्ध कर देती है। इस प्रकार श्वास - निःश्वास की वायु मुख विवर से फेफड़े की ओर और फेफड़े से चली निःश्वास की वायु मुख विवर से होती हुई बाहर की ओर आती है। ऐसे में मौखिक ध्वनियों (स्वर - व्यंजन) का उच्चारण होता है।

द्वितीय अवस्था

तृतीय अवस्था में अलिजिव्हा से बढ़कर नासिका मार्ग को कुछ अवरूद्ध कर देती है। किन्तु कुछ भाग खुला भी रहता है। इसी स्थिति में निःश्वास की कुछ वायु नासिका मार्ग से निकलती है, तो कुछ मुख मार्ग से। अनुनासिक स्वरों का उच्चारण अलिजिव्हा की इसी स्थिति में होती है। उर्दू की संघर्षो ध्वनि क, ख, ग के उच्चारण में अलिजिव्हा, जिव्हापश्च यां जिव्हा मूल को स्पर्श करती है या फिर उसके निकट आ जाती है।

तृतीय अवस्था

५. नासिका विवर (Nasal Cavity) :

श्वसन प्रक्रिया में वायु का फेफड़ों से आवागमन नासिका-विवर से चलता रहता है। श्वसन नलिका बाहर की ओर से दो भागों में विभक्त होती है और आगे चलकर एक हो जाती है। अलिजिव्हा के पश्चात भोजन नलिका से जुड़कर आगे बढ़ती है। स्वर-यंत्र मुख आवरण के पश्चात श्वास-नलिका के पीछे भोजन नलिका होती है जो अमाशय तक जाती है। मुख मार्ग के अवरूद्ध होने के पश्चात वायु जब नासिका मार्ग से निकलता हैं तो नासिक्य ध्वनियों - ङ - ञ्, ण, न, म का उत्पादन होता हैं। जब नासिका मार्ग से कुछ वायु और मुख मार्ग से कुछ वायु साथ-साथ बाहर आती है, तो अनुनासिक ध्वनियों अँ, आँ, एँ, ओंआदि का उत्पादन होता है।

६. ताल (Palate) :

मुख विवर के ऊपरी भाग को तालु कहते हैं। इसका विस्तार आगे की ओर दाँत से पीछे अलिजिव्हा के मध्य भाग में है। तालु के अन्तर्गत पीछे की ओर से क्रमशः कोमल तालु, गुर्द्धा, कठोर ताल और वर्त्स की स्थिति होती है। ये सभी स्थिर अंग हैं। निःश्वास की वायु और जीभ के विभिन्न भागों का स्पर्श विभिन्न ध्वनियों के उत्पादन में सहयोगी होती है।

७. जिव्हा (Tongue) :

मुख विवर के निचले भाग में जिव्हा की स्थिति होती है। यह मांसल अंग ध्वनि उत्पादन में विशेष सहयोगी होता है। संस्कृत में जीभ का पर्यायवाची शब्द वाणी है। वाणी का एक अर्थ भाषा भी है। इस प्रकार जिव्हा का महत्त्व स्वतः स्पष्ट हो जाता है। जीभ के विभिन्न भाग ध्वनि उत्पादन में अपनी विशेष भूमिका में सामने आते है। इसलिए इसको जिव्हा नोक, जिव्हा अग्र, जिव्हा मध्य, जिव्हा पश्च और जिव्हा मूल पाँच भागों में विभक्त करते है। जीभ की गतिशीलता ध्वनि उत्पादन में विशेष सहयोगी सिद्ध होती है।

८. दाँत (Teeth) :

मुख के आगे के भाग के दोनों जबड़ों में दंत-पंक्तियाँ होती हैं। दाँतों का मुख्य कार्य भोजन के अनुकूल रूप में ग्रहण करने के साथ ध्वनि-उत्पादन में सहयोग करना है।

९. ओष्ठ (Lips) :

मुख का सबसे आगे का मांसल भाग ओष्ठ एक ओर भोजन ग्रहण करने में सहयोगी होता है तो दूसरी ओर ध्वनि - उत्पादन में भी सहयोगी सिद्ध होता हैं। इन दोनों प्रक्रियाओंमें ऊपरी ओष्ठ एवं निचले ओष्ठ दोनों की भूमिका समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। दोनों ओष्ठ मिलकर ही ध्वनि उत्पादन की प्रक्रिया पूरी करते है।

ध्वनि उत्पादन में फेफड़ों से लेकर ओष्ठ तक के सभी अंगों की अपनी-अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। सभी अंगों की समन्वित भूमिका से ही भाषा की विभिन्न ध्वनियों का अनुकूल उत्पादन संभव होता है।

१०. मूर्धा :

ऊपर के दाँत पंक्ति के निकट के कठोर तालु के खुरदरे भाग को मूर्धा कहते हैं।

ट, ठ, ड, ढ आदि का उच्चारण मूर्धा से ही होता है।

११. वर्त्स :

ऊपर के दांतों के निकट तालु - भाग को वर्त्स कहते हैं।

'न' का उच्चारण वर्त्स की सहायता से होता है।

१२. दंत मूल :

कठोर तालु के अंतिम छोर को दंत मूल कहते हैं।

यहीं पर दाँतों की जड़ें होती हैं।

१३. मुख विवर :

अलिजिव्हा के एक ओर नासिका विवर तथा दूसरी ओर मुख विवर है। मुख विवर में दंत, वर्त्स, तालु, जिव्हा आदि वागंग होते हैं ।

१६. श्वास नली :

श्वास नली के माध्यम से ही वायु नासिका से फेफड़ों तक पहुँचती है और श्वास नली के माध्यम से ही बाहर निकलती है। स्वन प्रक्रिया में श्वास नली ेका अत्याधिक महत्त्व है।

१५. स्वर यंत्र :

स्वर यंत्र श्वास नली के ऊपरी किनारे के पास विद्यमान होता है। जब निःश्वास वायु फेफड़ों से बाहर निकलती हैं तो श्वास नाल से होती हुई स्वर यंत्र तक पहुँचती है। इस स्वर यंत्र से ही स्वर तंत्रियाँ होती हैं।

१६. स्वर तंत्रियाँ :

स्वर यंत्र में पतली झिल्ली से बने दो पतले पर्दे होते हैं जो अत्यंत लचीले होते है। इनको ही स्वर तंत्री कहते हैं। स्वर तंत्रियों के कंपन से ही अनेक प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न होती है।

१७. काकल :

स्वर तंत्रियों के बीच के खुले भाग को काकल कहते है। इसके रास्ते की वायु बाहर निकलती है। इसे स्वर-यंत्र मुख भी कहते हैं।

१८. कंठ पिटक :

गले का वह भाग जो कुछ उठा रहता है उसे कंट पीटक कहते हैं। सामान्य भाषा में इसे 'टेटुवा' कहते हैं। यह ध्वनियोंे का उच्चारण करने व उन्हेंे विविध रूप देने में सहायक है।

१९. कंठ मार्ग :

कंठ मार्ग मुख के नीचे तथा कंठ छिद्र के ऊपर होता है। उच्चारण में इसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है।

६.५ स्वनिम की विशेषताएँ

स्वनिम की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

१. स्वनिम भाषा की लघुतम इकाई है ; यथा, अ, त, क, प आदि.

२. स्वनिम विभिन्न समान ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करता है। यदि एक ध्वनि का एक से अधिक या अनेक तरह से उच्चारण किया जाए, तो उसके लिए एक ही स्वनिम होगा। यथा - क ध्वनि को दस व्यक्ति बोले या एक ही व्यक्ति दस बार बोले तो इसके दस रूप होंगे, किन्तु इन दसों ध्वनि-रूपों के लिए एक ही स्वनिम होगा।

३. स्वनिम अर्थ भेदक इकाई है; यथा - तन और मन शब्दों में अर्थ - भिन्नता त और म स्वनिमों की भिन्नता के कारण हैं। 'त' के न और मन के 'न' के उच्चारण में सूक्ष्म भिन्नता अवश्य है, किन्तु दोनों एक ही स्वनिम से सम्बन्धित है; इसलिए इसमें अर्थ - भिन्नता नहीं होती है।

४. स्वनिम उच्चारित भाषा से सम्बन्धित है। लिखित भाषा से इनका सम्बन्ध नहीं होता। लिखित भाषा में इसी प्रकार की इकाई लेखिम होती है। हिन्दी में एक स्वनिम है जिसके लिए अंग्रेजी में कई लेखिमों का प्रयोग होता है ; यथा - C > कैमल - K > काइट > केमेस्ट्री Chemistry, Question > चैक Cheque CK > बैक Back आदि।

५. प्रत्येक भाषा के अपने स्वनिम होते हैं, जो अन्य किसी भी भाषा के स्वनिम से भिन्न होते है। अर्थात स्वनिम भाषा विशेष पर आधारित होते हैं ; यथा - प, फ हिन्दी के स्वनिम हैं, जब कि अन्य भाषा में ये ध्वनियाँ भी हो सकती हैं। जब कोई व्यक्ति अपनी भाषा के स्वनिमों से भिन्न किसी अन्य भाषा के स्वनिमों का प्रयोग करता है, तो उनके उच्चारण में कठिनाई आती है। ऐसे समय वह न स्वनिमों की भिन्नता के आधार पर विभिन्न भाषा - भाषियों की पहचान सम्भव है। यदि हिन्दी में जल है तो बंगला में जाँल।

६. स्वनिम समीपवर्ती ध्वनियों से प्रभावित होते हैं ; त अघोष, अल्पप्राण, दन्तय ध्वनि जब न के साथ प्रयुक्त होती है तो नासिक्य ध्वनि न का प्रभाव उस पर पड़ जाता है।

   उदाहरण - तन झ तॅन।

७. सभी भाषाओं में ध्वनियों की एक निश्चित व्यवस्था होती है जिसके आधार पर उनमें ध्वन्यात्मक संतुलन बना रहता है ; यथा - हिन्दी के क, ध, झ, ठ, ढ आदि स्वनिमों का ज्ञान हो तो स्वनिम व्यवस्था के अनुसार अल्पप्राण - महाप्राण के क्रम के अनुसार 'क' वर्ग में 'घ' के अतिरिक्त 'ख' एक अन्य महाप्राण ध्वनि की सम्भावना स्पष्ट हो जाएगी इस प्रकार स्वनिम - व्यवस्था पूरी हो जाती है।

८. कभी - कभी दो ध्वनियाँ बिना अर्थ - परिवर्तन के एक - दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त होती हैं। यह प्रायः बोलियों की सहजीकरण की स्थिति में होता है, किन्तु यथा - कक्षा मानक उच्चारण में भी ऐसे प्रयोग मिल जाते है ; यथा क > क > ख > ख, ज > ज इल्जाम प्रथम शब्द का अर्थ दोष हैं और द्वितीय अर्थ है - घोडे के मुख में लगाम देना। यहाँ दोनों ही शब्द समान दोष अर्थ में ही प्रयुक्त हुए हैं।

९. प्रत्येक भाषा के स्वनिमों की संख्या भि्न्न होती है।

१०. यदि कोई ध्वनि एक बार निश्चित हो जाए कि स्वनिम है तो वह सदा प्रत्येक स्थिति में स्वनिम होगी। Once phoneme ever phoneme

११. यदि कोई ध्वनि आदि, मध्य और अन्त में से किसी एक में मिले तो स्वनिम स्थिति विचारणीय है। हिन्दी में ऐसी स्थिति नहीं दिखाई देती हैं। अंग्रेजी ध्वनियाँ P + K की आदि स्थिति में क्रमशः P, h, Th, Kh हो जाती हैं, किन्तु मध्य और अंत में पूर्ववत PTK रहती हैं।

आदि मध्य अन्य Ph-p- - Pth-t-tkh-K--K प्रवर्तित ध्वनि केवल आदि में है। मध्य तथा अन्त स्थिति में अधिक परिवेश में प्रयुक्त होने से Pt K स्वनिम हैं। ये ध्वनियाँ आपस में संस्वन हैं।

१२. स्वनिम ज्ञान से भाषा के शुद्ध उच्चारण में सरलता होती है। स्वनिम के माध्यम से ही किसी भाषा की मूल - ध्वनियों का ज्ञान होता है। इस प्रकार भाषा - शिक्षण में स्वनिम ज्ञान का विशेष महत्त्व है।

१३. स्वनिम उच्चारित भाषा से सम्बन्धित है। इनके माध्यम से भाषा की ध्वनियों की संख्या का नियंत्रण होती है। इस प्रकार के नियंत्रण से भाषा उच्चारण में समुचित व्यवस्था बनी रहती है। स्वनिम व्यवस्था से नई ध्वनियों के आगमन पर उनका सीखना संभव है और सरल होता है।

१४. स्वनिम भाषा की अर्थ भेदक इकाई है। भाषा की अन्य इकाईयाँ - शब्द, पद, वाक्य आदि का ज्ञान तब तक संभव नहीं होता जब तक स्वनिम का ज्ञान ही - क्योंकि भाषा की परवर्ती बृहत्तर इकाईयाँ स्वनिम पर आधारित है।

१५. लिपि - निर्माण में स्वनिम की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी भाषा के स्वनिमों के निश्चयन के पश्चात ही लिपि का निर्माण होता है। इस प्रकार स्वनिम को लिपि का मूलाधार कह सकते हैं।

१६. आदर्श लिपि का निश्चय ही स्वनिम के माध्यम से होता है। जिस लिपि में एक स्वनिम के लिए एक लिपि चिन्ह हो, उसे आदर्श लिपि कह सकते है।

१७. लिपि - निर्माण में स्वनिम की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी भाषा के स्वनिमों के निश्चयन के पश्चात ही लिपि का निर्माण होता है। इस प्रकार स्वनिम को लिपि का मूलाधार कह सकते है।

१८. आदर्श लिपि का निश्चय ही स्वनिम के माध्यम से होता है। जिस लिपि में एक स्वनिम के लिए एक लिपि चिन्ह हो, उसे आदर्श लिपि कह सकते है।

१९. स्वनिम के माध्यम से ही अन्तरराष्ट्रीय लिपि I.N.P.A. का रूप सामने आया है। सभी भाषाओं के विभिन्न स्वनिमों के लिए इसमें समुचित रूप से एक - एक चिन्ह की व्यवस्था होती है। इस प्रकार भाषा के शुद्ध उच्चारण, आदर्श लिपि और अन्तरराष्ट्रीय लिपि निर्माण आदि में स्वनिम की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

६.६ स्वनिम एवं संस्वन

इस अध्याय में हम स्वनिम के विषय में जान चुके है | अतः स्वनिम और संस्वन के विषय में जानने से पहले संस्वन के विषय में जानेंगे |

संस्वन – संस्वन को संरूप,संध्वनि या उपस्वन भी कहा जाता है | इन्हें एक प्रकार से स्वनिम के व्यवहारिक रूप कहा जा सकता है | भाषा का यदि विस्तार से अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा कि भाषा में संस्वन का प्रयोग होता है स्वनिम का नहीं | लेकिन स्वनिम के अनेक संस्वन या उपस्वन हो सकते है |और स्वनिम के बदल जाने से स्वनिम में कोई भेद नहीं होता है | यदि हम हिन्दी शब्दों के कुछ उदाहरण देखे तो स्पष्ट हो जायगा कि संस्वन और स्वनिम में क्या अंतर है | हिंदी भाषा की शब्दावली में जैसे 'ल' अक्षर है जिसका हम अलग अलग शब्दों में आराम से उच्चारण करें और उस उच्चारण प्रक्रिया में जिव्हा की स्थति देखें तो पायेंगे कि एक ही अक्षर के उच्चारण में जिव्हा शब्द के हिसाब से कभी पलट जाती है, कभी दांत के आगे की ओर आती है,तो कभी नीचे की ओर | 'चलो' शब्द में जिव्हा की स्थिति दांत से थोडा आगे होती है ,'मेले' शब्द के उच्चारण में दांत से थोडा और आगे, वही मेले शब्द के उच्चारण में इससे और भी आगे |इस प्रकार 'ल' अक्षर इन तीनों ध्वनियों के उच्चारण में एक दुसरे से अलग है | ध्वनि एक होते हुए भी इसके प्रयुक्त रूप तीन है | यदि 'ल' अक्षर के और भी शब्द देखेंगे तो उनका प्रयुक्त रूप भी उतने ही प्रकार का होगा | इसीलिए संस्वन का स्वभाव भौतिक है जबकि स्वनिम का मानसिक इस प्रकार हम कह सकते है कि संस्वन यदि व्यक्ति है तो स्वनिम जाति है | जिस प्रकार समाज में एक जाति में कई सारे व्यक्ति होते है सभी व्यक्तियों का स्वभाव अलग – अलग होता है उसी प्रकार स्वनिम के बहुत सारे संस्वन (व्यवहृत रूप) होते है | इस प्रकार भाषा अध्ययन में स्वनिमों और उनके संस्वन का निर्धारण करके उनको कोष्टक में अंकों के साथ लिखकर उनका सूक्ष्म भेद बताया जाता है |

स्वनिम और संस्वन - भाषा अध्ययन में स्वनिम और संस्वन का जब हम अंतर देखते है उस समय सबसे पहले यह देखना होगा कि दिये गये शब्द या वाक्य में कितनी ध्वनियां है। शब्द या वाक्य में जितनी मूल ध्वनियां होंगी उसमें उतने ही स्वनिम होंगे तथा उसमें एक ही मूल ध्वनि की जितनी अन्य ध्वनियां होंगी वे उसके संस्वन होंगे। इसकी हम दिये गये वाक्य से समझ सकते हैं- सबल केवल वो एक अनादि राम है।

क) व्यंजन

ध्वनि	**प्रयोग**
स्	१ बार
ब्	१ बार
ल्	२ बार
क्	२ बार
व्	२ बार
ए्	१ बार
अ	१ बार
न्	१ बार
र्	१ बार
म्	१ बार
ह्	१ बार
११	**१४**

ख) स्वर

अ	९ बार
आ	२ बार
इ	१ बार
ए	१ बार
ऐ	१ बार
५	**१४**

कुल ध्वनियां – ११+ १४ = २५

कुल प्रयोग – २५ + १४ = ३९

उक्त दिए गए उदहारण के द्वारा यह स्पष्ट है कि वाक्य में ध्वनियों का प्रयोग एक से अधिक बार हुआ है | जैसे 'ल्','क्','व्' ध्वनि दो बार प्रयुक्त हुई है | स्, ब्, ए,अ ध्वनि एक बार प्रयुक्त हुई है |अतः हम कह सकते है कि वाक्य में 'ल्','क्','व्' स्वनिम एक है और उसके संस्वन दो है |इसके अतिरिक्त वाक्य में ११ व्यंजन ध्वनियाँ है उनका १४ बार प्रयोग

हुआ है |स्वर ध्वनियाँ ५ है और उनका प्रयोग १४ बार हुआ है |अतः अंत में कह सकते है कि वाक्य में स्वर और व्यंजन मिलकर २५ ध्वनियाँ अर्थात स्वनिम है और इनका प्रयोग कुल ३९ बार हुआ है जो संस्वन है |

६.७ स्वनिम के भेद

स्वनिम के भेद दो प्रकार के होते है -

६.७.१ खंड्य स्वनिम और

६.७.२ खंड्येतर स्वनिम

हिंदी के समस्त स्वर और व्यंजन ध्वनियों उनके वर्गों तथा उनकी स्वनिमिक स्थिति से आपका परिचय कराया गया। इनमें से अधिकांश ध्वनियों का उच्चारण स्वतंत्र रूप से किया जा सकता है। इनको खंड्य ध्वनियाँ कहा जाता है। लेकिन भाषाओं में ऐसी भी ध्वनियाँ होती है जो स्वंतत्र रूप से उच्चारित न होकर किसी स्वतंत्र ध्वनि का सहारा लेकर उच्चारित की जाती है। इन्हें खंड़ेतर ध्वनियाँ कहा जाता है। आप इस इकाई में खड़ीय और खंडेतर ध्वनियों के अंतर समझ पाएँगे।

६.७.१ खंड्य स्वन या स्वनिम :

आप स्वर और व्यंजन ध्वनियों (स्वनों की उच्चारणात्मक विशेषताओं) से परिचित हो चुके हैं। यदि कोई आपसे पूछे कि हिंदी की 'प्" ध्वनि की उच्चारणात्मक विशेषताएँ क्या हैं तो आप बड़ी आसानी से 'प्" ध्वनि के उच्चारणात्मक गुणों को बता सकते हैं कि 'प्" एक ओष्ठ्य व्यंजन ध्वनि है जिसका उच्चारण ओठों के पास से किया जाता है। इसके उच्चारण से निचला ओंठ ऊपर के ओंठ का 'स्पर्श" करता है। अतः यह एक स्पर्शी ध्वनि है। साथ ही यह 'अघोष" तथा 'अल्पप्राण" भी है। क्योंकि इसके उच्चारण में स्वरतंत्रियां झंकृत नहीं होती हैं और वायु के अवरोध के बाद मुख से कम मात्रा में वायु बाहर निकाली जाती है। इस प्रकार 'प्" ध्वनि के अलग-अलग गुण इस प्रकार लिखे जा सकते हैं।

/प् / = (ओष्ठ्य, अघोष, अल्पप्राण, स्पर्शी, व्यंजन)

किसी भी ध्वनि के इन ध्वनि - गुणों या उच्चारणात्मक - गुणों को 'अभिलक्षण" कहा जाता है। उदाहरण के लिए 'ख" तथा 'ज" ध्वनि के उच्चारणात्मक गुण या अभिलक्षण इस प्रकार बताए जा सकते है।

/ख् / = (कंठ्य, अघोष, महाप्राण, स्पर्शी, व्यंजन)

/ज् / = (तालण्य सघोष अल्पप्राण स्पर्श-संघर्षी व्यंजन)

कहने का तात्पर्य यह है हिंदी में 'प्", 'ख", 'ज्" आदि स्वन जो स्वतंत्र ध्वनियाँ हैं, एक से अधिक गुणों या अभिलक्षणों को अपने में समाहित किए हुए हैं। जब भी हमें इन स्वतंत्र ध्वनियों का उच्चारणात्मक विवरण देना होता है तब हम इनको छोटे-छोटे खंडों में बाँट कर इनके अलग-अलग अभिलक्षणों को बता देते हैं। दूसरे शब्दों में इसी बात को इस रूप में कहा जा सकता है कि ये ध्वनियाँ ऐसी ध्वनियाँ हैं जिनको अभिलक्षणों या ध्वनि गुणों के छोटे-छोटे खंडों में विभक्त किया जा सकता है।

"खंड्य" शब्द का अर्थ ही है - 'जिसके खंड किए जा सके।" अतः खंड्य ध्वनियाँ या स्वन वे ध्वनियाँ हैं जिनके अभिलक्षणों के रूप में या ध्वनि-गुणों के रूप में खंड किए जा सकते हों। इस दृष्टि से भाषा में स्वतंत्र रूप से उच्चारित की जाने वाली सभी ध्वनियाँ 'खंड्य ध्वनियाँ" कहलाती हैं।

ये "खंड्य ध्वनियाँ" या स्वन जब किसी भाषा में न्यूनतम युग्मों में प्रयुक्त होकर शब्द का अर्थ परिवर्तित करने की क्षमता रखते हैं। तब हम उन्हें 'खंड्य स्वनिम" कहने लगते हैं।

६.७.२. खंड्येतर स्वन या स्वनिम

भाषा में सभी स्वनों का उच्चारण स्वतंत्र रूप से नहीं किया जाता। कुछ स्वन या ध्वनियाँ ऐसी भी होती हैं जो किसी स्वतंत्र ध्वनि का सहारा लेकर ही उच्चरित की जाती है। उदाहरण के लिए आपने अनुनासिक स्वरों में देखा था कि अनुनासिकता या उच्चारण अलग से स्वतंत्र रूप में नहीं किया जा सकता। यह तो स्वयं में एक ध्वनि-गुण या अभिलक्षण है जो हमेशा स्वरों के साथ ही उच्चारित होता है।

जिस प्रकार 'घोषत्व" या "प्राणत्व" व्यंजनों के अभिलक्षण या ध्वनि गुण हैं उसी प्रकार अनुनासिकता भी स्वरों का गुण हैं। अर्थात् जब आप स्वरों का उच्चारण करते समय वायु को केवल मुख से बाहर निकालते हैं तब मौखिक स्वर उच्चारित होते हैं परन्तु जब वायु मुख के साथ-साथ नासिका से भी बाहर निकाली जाती है तब अनुनासिक स्वर उच्चारित होते हैं।

जब किसी भाषा में अनुनासिक स्वर मौखिक स्वरों के साथ न्यूनतम युग्मों में प्रयुक्त होकर शब्द का अर्थ परिवर्तित कर देते हैं तब उस भाषा में अनुनासिकता को स्वानिमिक कहा जाता है। हिंदी में अनुनासिकता स्वनिमिक है अर्थात स्वनिम की कोटि में आती हैं। इस प्रकार के स्वनों या स्वनिमों को जो स्वय में ध्वनि गुण या अभिलक्षण है तथा जिनका उच्चारण अलग से स्वतंत्र रूप से न होकर किसी न किसी स्वतंत्र ध्वनि के साथ ही हो सकता है, खंड्येतर, स्वन या खंडेतर स्वनिम कहे जाते हैं।

"खंडेतर" शब्द का अर्थ है - 'खंडों से इतर" अर्थात जिनके खंड करना संभव न हो। अनुनासिकता के अलावा भाषाओंमें और भी खंडेतर ध्वनियाँ प्राप्त होती हैं जिनमें बलाघात, तान, अनुतान, दीर्घता, संघिता आदि उल्लेखनीय हैं।

खंड्येतर ध्वनियाँ भाषा में स्वतंत्र रूप से उच्चरित नहीं हो सकती। प्रायः खंडेतर ध्वनियाँ शब्दों में अक्षरों का आश्रय लेकर उच्चरित होती है अतः खंडेतर ध्वनियों के अध्ययन के पूर्व 'अक्षर" से हमारा क्या तात्पर्य है यह समझना आवश्यक है।

जैसा कि पहले कहा गया है कि खण्ड स्वनिम विभाज्य हैं और इसमें स्वर और व्यंजन आते हैं। वितरण की विधि से इनका विश्लेषण किया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ स्वनिम ऐसे हैं जो खंड स्वनिमों पर निर्भर है। उन्हें खंड स्वनिमों से पृथक उच्चारित नहीं किया जा सकता है। अतः इन्हें खण्डेतर अविभाज्य या अव्यक्त कहा जाता है। ये पाँच है - मात्रा, सुर, बालाघात, संगम, अनुनासिकता.

a) मात्रा :

इसको दीर्घता भी कहते हैं। स्वर और व्यंजन दोनों में मात्रा या दीर्घता के कारण अन्तर होता है। स्वरों के मात्राभेद को ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत नाम से जाना जाता है। ह्रस्व (१ मात्रा), दीर्घ (२ मात्रा), प्लुत (३ मात्रा या इससे अधिक) इसी कारण अ, आ, अ ऽ में भेद हैं। कम, काम, रामऽ व्यंजनों में भी दीर्घता होती है। संयुक्त व्यंजन दुगुना समय लेते हैं और उससे अर्थभेद भी होता है।

जैसे - बचा - बच्चा, सजा - सज्जा, पका - पक्का, गदा - गद्दा।

b) सुर या सुर-लहर :

यह शब्द और वाक्य दोनों स्तरों पर प्राप्त होता है। स्वरतंत्रियों पर कितना तनाव आता है ? इस आधार पर इसका भेद किया जाता है। वैदिक साहित्य में स्वर के तीन भेद किए है -

उदात (उच्च)

स्वरित (मध्यम)

और अनुदात (निम्न)

ग्लीसन के सुर के चार भेद किए हैं - अत्युच्च, उच्च, मध्य, निम्न।

सामवेद में स्वर - संकेत संख्या द्वारा ही प्रचलित था,

१. उदात

२. स्वरित

३. अनुदात

यह अधिक सुविधाजनक है। लौकिक संस्कृत और हिन्दी में सुर का प्रयोग सामान्यतः शब्दों में नहीं होता है, वाक्यों में इसका प्रयोग मिलता हैं। तद्नुसार अर्थभेद भी होता है।

c) बलाघात :

संस्कृत और हिन्दी में बलाघात पाया जाता है। बलाघात फेफड़ों से आने वाले वायु-प्रवाह की तीव्रता पर निर्भर होता है। अधिक या कम तीव्रता के आधार पर इसके चार भेद किए जाते है। १. तीव्र, २. मन्द, ३. संश्लिष्ट, ६. हीन

जैसे - मैं कानपुर जा रहा हूँ।

(मैं ही कानपुर जा रहा हूँ।)

(मैं ही जा रहा हूँ कानपुर।)

(मैं कानपुर ही जा रहा हूँ।)

d) संगम :

शब्दों और वाक्यों के कुछ ध्वनियाँ इस प्रकार संयुक्त रूप में मिलती है कि पदच्छेद या यति के द्वारा उनके विभिन्न अर्थ निकलते हैं।

e) अनुनासिकता :

संस्कृत और हिन्दी में अनुनासिकता के आधार पर अर्थभेद पाया जाता है। इनके न्यूनतम विरोधी युग्म भी मिलते हैं।

जैसे - गोद - गोंद

काटा - कांटा

दाव - दांव

है - हैं

हो - हों आदि

६.८ सारांश

प्रस्तुत इकाई में विद्यार्थियों ने स्वन विज्ञान उसकी परिभाषा, स्वरूप, वाग अवयव और उनके कार्य तथा स्वनिम की विशेषताएँ आदि का अध्ययन किया गया है। 'स्वन' भाषा की लघुत्तम इकाई है। किसी भाषा विशेष में पाए जानेवाले स्वनिमों और उसकी व्यवस्था का विशेष अध्ययन ही स्वनिम विज्ञान है, इसे जान सके। साथ ही स्वनिम विज्ञान की केंद्रीय विषय-वस्तु 'स्वनिम' का विवेचन करते हुए अनुप्रयोगात्मक पक्ष को भी उद्घाटित किया गया है।

६.८ लघुत्तरीय प्रश्न

१) ब्लूमफील्ड और डैनियल सापीर किसे मनोवैज्ञानिक इकाई मानते है?

२) मुख विवर के ऊपरी भाग को क्या कहते हैं?

३) स्वनिम के भेद कितने है?

४) स्वर तंत्रियों के बीच के खुले भाग को क्या कहते हैं?

६.९ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) स्वन विज्ञान की परिभाषा और स्वरूप को स्पष्ट करे।

२) वाग अवयव और उनके कार्य पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

३) स्वन विज्ञान की विशेषताओंपर प्रकाश डालिए।

४) स्वनिम के भेदों पर विशद चर्चा करें।

६.१० संदर्भ ग्रंथ

१) हिंदी भाषा - डॉ. भोलानाथ तिवारी

२) भाषाशास्त्र तथा हिंदी भाषा की रूपरेखा - डॉ. देवेंद्र कुमार शास्त्री

३) भाषा विज्ञान के अधुनातम आयाम - डॉ. अंबादास देशमुख

४) भाषा विज्ञान की रूपरेखा - द्वारका प्रसाद सक्सेना

५) भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिंदी भाषा - डॉ. भोलानाथ तिवारी

❖❖❖❖

७

स्वन परिवर्तन

इकाई का स्वरूप :

७.१ इकाई का उद्देश्य

७.२ प्रस्तावना

७.३ स्वन परिवर्तन की दिशाएँ

७.४ स्वन परिवर्तन के कारण

७.५ सारांश

७.६ लघुत्तरीय प्रश्न

७.७ दीर्घोत्तरी प्रश्न

७.८ संदर्भ ग्रंथ

७.१ इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद निम्नलिखित मुद्दों से परिचय होगा।

i) स्वनिम में परिवर्तन की दिशाएँ स्पष्ट होगी।

ii) स्वन परिवर्तन के कारण को समझ पाएँगें।

iii) हिंदी स्वरों तथा व्यंजनो के वर्गीकरण से परिचय होगा।

७.२ प्रस्तावना

परिवर्तन सृष्टि का नियम है। इसी परिवर्तन से विश्व में अनेक वस्तुओंमें निरन्तर परिवर्तन होता है और हो रहा है। संसार की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है। विश्व की प्रत्येक भाषाओं में सतत परिवर्तन हो रहा है। इसी परिवर्तन से भाषा की ध्वनियों में भी निरन्तर परिवर्तन होता रहा है।

७.३ स्वन - परिवर्तन की दिशाएं

इसे ध्वनि - विकार या ध्वनि विकास भी कहते है। भाषा सतत परिवर्तनशील है। परिवर्तन के इस क्रम में कभी ध्वनियाँ पूर्णतः बदल जाती है, कभी कुछ परिवर्तित होती है। कभी ध्वनि का लोप होता है, तो कभी आगम होता है। इस प्रकार ध्वनियों में होने वाले विविध विकारों को ध्वनि - परिवर्तन या विकास कहते है। इसमें मुख्यतः निम्नलिखित दिशाएं दिखाई देती है।

१. आगम

जब किसी शब्द में किसी ध्वनि का नया प्रयोग होता है, तो उसे आगम कहते हैं। शब्द के आदि, मध्य तथा अन्त स्थित में स्वर तथा व्यंजनों दोनों के ही आगम सम्भव हैं।

क) स्वरागमन : जब शब्द में किसी नए स्वर का प्रयोग आदि, मध्य या अन्त स्थिति में हो तो, स्वरागमन कहते है; यथा

आदि स्वरागमन - स्कूल > इस्कूल, स्नान > अस्नान,

मध्य स्वरागमन - पूर्व > पूरब, मर्म > मरम,

अन्त स्वरागमन - दवा > दवाई, प्रिय > प्रिया

ख) व्यंजनागम : जब शब्द में आदि, मध्य या अन्त स्थिति में किसी व्यंजन ध्वनि का आगम हो; यथा -

आदि व्यंजनागम : उल्लास > हुलास

ओष्ठ > होठ

मध्य व्यंजनागम : वानर > बन्दर

शाप > श्राप

अन्त व्यंजनागम : भौं > भौंह

परवा > परवाह

२. लोप :

आगम का विपरीत लोप है। भाषा प्रवाह में तीव्रता मुख - सुख के कारण यदा - कदा शब्द के आदि मध्य अथवा अन्त में स्वर या व्यंजन ध्वनि का लोप हो जाता है। ध्वनिलोप को स्वर लोप, व्यंजन लोप, अक्षर लोप और सम ध्वनि लोप के रूप में विभाजित कर सकते हैं।

क) स्वर: लोप : जब शब्द में से किसी स्वर का लोप हो जाता है ; यथा -

आदि स्वर - लोप - अगर > गर

अनाज > नाज

मध्य स्वर लोप - नराधम > नर्धम

हरदम > हर्दम

अन्त्य स्वर लोप - निंद्रा > नींद

चर्ल > चल

ख) व्यंजन लोप : जब शब्द के आदि, मध्य या अंत से व्यंजन का लोप हो जाता है यथा -

आदि व्यंजन - स्थान > थान

स्थाली > थाली

मध्य व्यंजन - आम्र > आम

उष्ट्र > ऊँट

ग) अक्षरलोप : शब्द के आदि, मध्य या अंत से यदा - कदा अक्षर का लोप हो जाता है; यथा -

आदि अक्षर लोप - शहतूत > तूत

त्रिशूल > शुल

मध्य अक्षर लोप - भंडागार > भंडार

चतुष्क > चौक

अन्त्य अक्षर लोप - मर्कटिक > मकडी

भ्रतजाया > भ्रंतजा

घ) समध्वनि लोप : जब एक शब्द में कोई ध्वनि दो या दो से अधिक बार एक साथ प्रयुक्त होती है और उनमें से एक लुप्त हो जाए : यथा

संवाददाता > संवादाता

खरीददार > खरीदार

नाककटा > नकटा

३. विपर्यय :

जब किसी शब्द के स्वर-व्यंजन या व्यंजन स्वर या विभिन्न अक्षर एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं तो उसे ध्वनि - विपर्यय कहते है। विपर्य स्वर, व्यंजन तथा अक्षर तीनों ही संदर्भो में हो सकता हैं; यथा स्वर विपर्यय - कुछ > कुछ, इक्षु > नखनऊ, ईख > व्यंजन विपर्यय, चाकू > काचु, लखनऊ अक्षर विपर्यय - चावल, दाल > दादल, चाल, कोलतार - तारकोल.

४. समीकरण :

जब कोई ध्वनि अपने समीप की या निकटवर्ती ध्वनि को अपने समान बनाती है तो उसे समीकरण कहते है। समीकरण दो प्रकार के होते हैं।

क) पुरोगामी समीकरण : जब पूर्ववर्ती स्वर या व्यंजन ध्वनि, परवर्ती को अपने समान बनाती है; यथा -

स्वर समीकरण - हुक्म > हुकुम

जुल्ाम > जुलुम

व्यंजन समीकरण -चद्र > चक्का

पत्र > पता

ख) पश्चगामी समीकरण : जब परवर्ती ध्वनि पूर्ववर्ती ध्वनि को प्रभावित करती है;

जैसे -

स्वर समीकरण - अंगुली

श्वसुर > सुसुर ;

व्यंजन समीकरण -कर्म > कम्प

शर्करा > शक्कर

७. विषमीकरण :

यह समीकरण की उल्टी प्रक्रिया है। इसमें निकट की दो समान ध्वनियों में से एक ध्वनि परिवर्तित होकर भिन्न रूप धारण कर लेती है। ऐसे परिवर्तन से ध्वनि-श्रवण सरल हो जाता हैं। विषमीकरण भी पुरोगामी तथा पश्चगामी होते है।

क) पुरोगामी विषमीकरण : जब निकट की दो समान ध्वनियों में से एक ध्वनि पूर्ववर्ती ध्वनि ज्यो की त्यों रहती है, किन्तु परवर्ती बदल जाती है; यथा काक काग, कंकण, कंगन।

ख) पश्चगामी विषमीकरण : जब समीपवर्ती दो समान ध्वनियों में से परवर्ती ध्वनि ज्यो की त्यों रहती है और पूर्ववर्ती ध्वनि बदल जाती है; यथा - मुकुट > मउर, नुपूर > नेउर।

६. मात्रा भेद :

यदा - कदा शब्द में प्रयुक्त कोई मात्रा ह्रस्व से दीर्घ या दीर्घ से ह्रस्व हो जाती है इसे मात्रा भेद कहते हैं।

क) ह्रस्वीकरण : जब दीर्घ मात्रा ह्रस्व हो जाती है ; यथा ; शून्य - सुन्न, आष्ाढ > अषाढ़।

ख) दीर्घीकरण : जब ह्रस्व मात्रा दीर्घ हो जाती है ; यथा ; पुत्र > पुत, जिव्हा > जीभ, दुग्ध > दूध।

७. घोषीकरण :

जब कोई घोषी ध्वनि कुछ समय बाद ध्वनि के रूप में प्रयुक्त होने लगे, तो उसे घोषीकरण कहते हैं; यथा - मकर > मगर।

(क > ग) काक > काग

(त > द) शती > सदी

८. अघोषीकरण :

इनमें घोष ध्वनियाँ अघोष बन जाती है ;

यथा - अदद > (अ > त)

मदद > (द > त)

९. महाप्राणीकरण :

इस परिवर्तन में अल्प महाप्राण ध्वनियाँ महाप्राण बन जाती है ;

यथा - ग्रह > घर (ग > घ)

हस्त > हाथ (त > थ)

घष्ट > ढीत (ट > ड)

१०. अल्पप्राणीकरण :

इस शब्द में महाप्राण ध्वनि अल्पप्राण बन जाती है ;

यथा - भगिनी > बहिन (भ > ब)

सिन्धु > हिन्दु (घ > च)

११. अनुनासिकीकरण :

जब सामान्य मौखिक ध्वनियाँ कालान्तर मंे अनुनासिक रूप में प्रयुक्त होती हैं, तो उसे अनुनासिकीकरण कहते है ;

यथा - सर्प > साँप

सत्य > साँच

श्वास > साँस

१२. सन्धि :

कुछ शब्दों में मध्यगत व्यंजनों के लोप होने से कुछ स्वर संधि रूप में प्रयुक्त होते हैं ;

यथा - शत > सठ (अ और उ का संधिरूप)

नयन > नइन (अ और इन का संधिरूप)

७.४ स्वन परिवर्तन के कारण

स्वन परिवर्तन की दिशाओंके साथ - साथ ही हमें स्वन परिवर्तन के कारण से भी अवगत होना आवश्यक है। इनमें कुछ आंतरिक और कुछ बाह्य कारण होते हैं जो इस प्रकार है।

७.४.१ आंतरिक कारण

क) अनुकरण की अपूर्णता :

भाषा समाज सापेक्ष होती है। अर्थात् भाषा व्यक्ति परिवार और समाज से प्राप्त की जाती हैं। भाषा को प्राप्त करने वाला व्यक्ति जन्म से कुछ दिनों बाद ही माँ, परिवारजनों एवं समाज के लोगों से संपर्कित होकर भाषा - ध्वनियों एवं रूपों को ग्रहण करने लगता है। इस ग्रहण की प्रक्रिया को ही अनुसरण कहते है। यह अनुकरण कभी भी शत प्रतिशत नहीं होता अर्थात अनुकरण अपूर्ण होता है। जिससे अनुकरणकर्ता की बोली में विकार या विकास हो जाता है। यह विकार अधिकतम स्वनों में होता है। हस्त में हाथ, मस्तक से माथा, अंगुलिका से ऊंगली जैसे हजारो शब्दों में यह ध्वनि विकार देखा जा सकता है।

ख) प्रयत्नलाघव :

प्रयत्नलाघव मनुष्य के स्वभाव का अंग है। वह कठिन कार्यो से बचने का प्रयत्न करता हैं। इसीलिए वह भाषा में भी क्लिष्ट ध्वनियों की जगह सरल ध्वनियों को अपनाता है। सत्य से सच, कर्म से करम, मर्म से मरम, धर्म से धरम, चर्म से चरम आदि शब्दों का विकास इसी प्रवृत्ति की देन है। हिंदी की बोलियों में श, ष, घ वाणियों के स्थान में केवल स ध्वनि का पाया जाना भी प्रयत्न लाघव ही है।

ग) अज्ञान :

भाषा हस्तान्तरण, उच्चारण और श्रवण की प्रक्रिया है। व्यक्ति किसी शब्द को जिस रूप में सुनता है, उसे ज्यों का त्यों ग्रहण नहीं करता। उसके अपने भाषिक संस्कार उसका रूप रंग बदल देते हैं। इसीलिए एक देहाती के लिए स्टेशन के लिए टेशन, सिगनल के लिए सिंगल, लैटर्न के लिए लालटेन, लांगक्लाथ के लिए लंकलाठ, कृष्माण्ड के लिए कोंहडा जैसे शब्द बन गए।

घ) वाक्यंत्र की विभिन्नता :

किसी भी दो व्यक्तियों का वाक - यंत्र - ठीक एक ही प्रकार का नहीं होता, इसी कारण किसी भी एक ध्वनि का उच्चारण दो व्यक्ति ठीक एक तरह से नहीं कर सकते। एक से दूसरे में और दूसरे से तीसरे में कुछ अंतर अवश्य पड़ेगा। ये छोटे - छोटे अंतर कुछ दिनों में जब अधिक हो जाते हैं, तो स्पष्ट हो जाते हैं।

च) भ्रमक या लौकिक व्युत्पत्ति :

भ्रमक व्युत्पत्ति का संबंध भी अशिक्षा से है, पर साथ ही इसमें दो मिलते - जुलते शब्दों का होना भी आवश्यक है। भ्रमक व्युत्पत्ति में होता है कि लोग किसी अपरिचित शब्द के संसर्ग में जब आते हैं और यदि मिलता - जुलता कोई शब्द उनकी भाषा में पहले से रहता है तो उसे परिचित शब्द के स्थान पर उस परिचित शब्द का उच्चारण करने लगे हैं और इस प्रकार ध्वनि परिवर्तन हो जाता है।

छ) बोलने में शीघ्रता :

बोलने में शीघ्रता के कारण भी परिवर्तन हो जाता है - जब ही, कब ही, अब ही तथा तब ही के जभी, कभी, अभी और तभी इसी के उदाहरण हैं।

ज) भावुकता :

भावुकता के कारण भी शब्दों में पर्याप्त ध्वनि परिवर्तन देखा गया है। विशेषतः लोक प्रचलित व्यक्तिवाचक नाम तो अधिकांशतः इसी ध्वनि, परिवर्तन के परिणाम हैं। संबंधसूचक संज्ञाये 'अम्मा', 'चाची', 'बेटी', 'प्यारपूर्ण', भावुकता में ही 'अम्मी', 'चच्ची' या 'चचिया' तथा 'बिट्टो' या 'बिट्टी' आदि हो गयी है।

झ) विभाषा का प्रभाव :

एक राष्ट्र जाति या संघ दूसरे के संपर्क में आता है तो विचार - विनिमय के साथ ध्वनि विनिमय भी होता है। एक - दूसरे की विशेष ध्वनियाँ एक - दूसरे को प्रभावित करती है।

कुछ लोगों का विचार है कि भारोपीय भाषा में 'ट' वर्ग नहीं था। द्रविड़ों के प्रभाव से भारत में आने पर आर्यों के ध्वनि-समूह में उनका प्रवेश हो गया।

७.४.२ बाह्य कारण :

क) भौगोलिक :-

कुछ लोगों के अनुसार यदि कोई जाति किसी स्थान से हटकर अधिक ठण्डे स्थान पर बस जाती है तो उनमें विवृत ध्वनियों का विकास नहीं होता और जो विवृत रहती है, उनकी भी संवृत की और झुकाव होने लगता है। गर्म देश में जाने पर ठीक इससे उल्टा स्वन परिवर्तन होता है।

ख) सामाजिक और राजनैतिक :-

सामाजिक अवस्था के अनुसार भी ध्वनियों में परिवर्तन होता हैं। यदि किसी कमी के कारण अप्रसन्नता और दुःखपूर्ण वातावरण रहा तो सामान्यतः लोग धीरे से बोलते हैं। ऐसी दशा में भी संवृत की ओर झुकाव रहता है। इसी प्रकार यदि समाज में युद्ध का वातावरण रहा तो बोलने की गति बढ़ जाती है। अधिकार शब्दों के कुछ ही भाग पर बल दिया जाता है। जिससे कुछ ध्वनियों का लोप संभव होता है। इसके विरूद्ध यदि समाज में सुख - शांति रही तो विद्धा का प्रचार रहेगा और इसके कारण लोग अधिक शुद्ध बोलने का प्रयास करेंगे। इसी स्थिति में सांस्कृतिक पुनरूत्थान भी होते है और इनका भी अपवाद स्वरूप कभी - कभी ध्वनि का प्रभाव प़ड़ता है।

ग) ऐतिहासिक :-

विभिन्न ऐतिहासिक परिस्थितियाँ ध्वनियों के विविध परिवर्तनों को प्रभावित करती हैं। ध्वनियाँ विभिन्न कालों में, विभिन्न परिस्थितियों जैसे सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि के प्रभाव से बदलती रहती हैं। इस प्रकार एक भाषा जब अन्य भाषाओंके संपर्क में आती है तब उसकी ध्वनियों पर उन भाषाओं की ध्वनियों का प्रभाव पड़ता है फलस्वरूप उनमें परिवर्तन आ जाता है।

७.५ सारांश

प्रस्तुत इकाई में विद्यार्थियों ने स्वन परिवर्तन की दिशाएँ, स्वन परिवर्तन के कारण आदि का अध्ययन किया। आशा है कि विद्यार्थी इन मुद्दों को समझ सके होंगे|

७.६ लघुत्तरीय प्रश्न

१) ध्वनि के उच्चारण में लगनेवाली अवधि को क्या कहते हैं ?

२) 'मात्रा' के प्रकार कितने है ?

३) हिंदी भाषा में मुल रूप से कितने स्वर है ?

७.७ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) स्वन परिवर्तन की दिशाएँ और उसके कारणों पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

७.८ संदर्भ ग्रंथ

१) भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी

२) भाषा विज्ञान - रमेश शुक्ल

३) हिंदी भाषा, व्याकरण और रचना - डॉ. अर्जुन तिवारी

४) हिंदी वर्तनी का विकास - अनिता गुप्ता

५) हिंदी व्याकरण - कामता प्रसाद गुरु

❖❖❖❖

८

रूप विज्ञान

इकाई की रूपरेखा :

८.० इकाई का उद्देश्य

८.१ प्रस्तावना

८.२ रूप विज्ञान का स्वरूप

८.३ शब्द और रूप

८.४ अर्थ तत्व और संबंध तत्व

८.५ संबंध तत्व के प्रकार

८.६ रूप परिवर्तन की दिशाएँ

८.७ रूप परिवर्तन के कारण

८.८ रूपिम और स्वरूप

८.९ सारांश

८.१० अतिलघुत्तरीय प्रश्न

८.११ लघुत्तरीय प्रश्न

८.१२ दीर्घोत्तरी प्रश्न

८.१३ संदर्भ ग्रंथ

८.० इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन के बाद निम्नलिखित मुद्दों से आपका परिचय होगा -

- रूप विज्ञान की विभिन्न शाखाओंऔर महत्वपूर्ण भागों से आपका परिचय प्राप्त होगा।
- रूप विज्ञान के अर्थ, भेद, शब्द और रूप में अंतर और संबंध तत्व के प्रकार से परिचय प्राप्त कर पाएँगे।
- रूप परिवर्तन की दिशाएँ एवं कारण को जान पाएँगे।
- रूपिम और संरूप की जानकारी प्राप्त होगी।
- रूपिम के भेद को जान पाएँगे।

८.१ प्रस्तावना

रूपिम और वाक्यविज्ञान, भाषाविज्ञान की एक महत्वपूर्ण इकाई है। रूपिम को रूपतत्व, सम्बन्धतत्व, रूपगाम, मर्षिम आदि नामों से जाना जाता है। अँग्रेजी में इसे Pheme कहते है। इसी प्रकार वाक्य सार्थक शब्दों का समूह है। वाक्य ही भाषा की सबसे बड़ी इकाई है। वाक्य के द्वारा ही संपूर्ण भावों की अभिव्यक्ति संभव है। अत: वाक्य भाषा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई है। वाक्य अर्थ की दृष्टि से पूर्ण होता है। परंतु अर्थ की दृष्टि से वाक्य की पूर्णता भी कम विवादास्पद नहीं है। प्राय: हम अपने भावों को कई वाक्यों द्वारा व्यक्त करते हैं। यहाँ पर भाव अपने में पूर्ण हैं और कई वाक्य मिलकर उसे व्यक्त करते हैं।

८.२ रूप विज्ञान का स्वरूप

रूप विज्ञान को अँग्रेजी में Morphology कहा जाता है। इसे प्राचीन काल में पद-विज्ञान कहते थे। यह भाषाविज्ञान की एक प्रमुख शाखा है। इसके अंतर्गत रूपों (पद) का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। भाषा की इकाई वाक्य होती है। वाक्य में शब्द और शब्द में ध्वनियाँ होती है। एक या अनेक ध्वनियों से शब्द तथा एक या अनेक शब्द से वाक्य बनते हैं। वाक्य को भाषा की सार्थक इकाई माना जाता है। भाषा की व्याकरणात्मक संरचना दो प्रकार की होती है।

१) रूपात्मक संरचना

२) वाक्यात्मक संरचना

रूप भाषा की व्याकरणात्मक अभिव्यक्ति का लघुतम माध्यम है। वस्तुत: रूप विज्ञान की अवधारणा पर ही व्याकरण की अवधारणा स्थित है। शब्दों की रचना और भाषा में उनका प्रयोग रूप विज्ञान के विषय है और इन्हीं पर रूपात्मक भाषाओं का व्यापार टिका हुआ है। संसार की अधिकांश भाषाएँ रूपात्मक है। अत: रूप विज्ञान का महत्व अत्यधिक है।

८.३ शब्द और रूप (शब्द)

रूप या पद क्या है ? रूप या पद ध्वनियों का वह संयोग है जिसका अर्थ निश्चित होता है। शब्द को वाक्य में प्रयुक्त होने के योग्य बना लेने पर उसे रूप कहा जाता है। विचार करने पर ज्ञात होता है कि पदों के प्रत्येक वर्णों का कोई अर्थ नहीं होता। जैसे - 'राम' के र, आ, म्, अ का कोई अलग अर्थ नहीं है।

कोश - ग्रंथों में दिए गए शब्द तब तक सार्थक नहीं होते, जब तक उसका किसी वाक्य में प्रयोग नहीं होता। केवल 'राम' और 'पुस्तक' कहने से कोई अर्थ स्पष्ट नहीं होता। 'राम पुस्तक पढ़ता है' यह एक वाक्य है। इस वाक्य में 'राम' पुस्तक और 'पढ़ना' शब्द वाक्य में प्रयुक्त होने के कारण सार्थक है। अत: वाक्य को ही भाषा की सार्थक इकाई माना जाता है।

पंतजलि का भी यही मत है। वे कहते हैं कि वास्तविक सत्ता वाक्य की है, पदों की नहीं।

कुछ लोग रूप या पद तथा शब्द को एकार्थक समझते है, पर ऐसा नहीं है। सार्थक मूल रूप को शब्द कहते हैं। संस्कृत में मूल शब्द को प्रकृति या प्रतिपादिक कहा जाता है। कोश में मिलने वाले शब्द प्रतिपादिक होते हैं।

ऊपर कहा गया है कि सार्थक ध्वनि समूह को शब्द कहा जाता है। इसे मूल रूप समझना चाहिए। कोई भी शब्द जब तक पद नहीं बन जाता तब तक इसका प्रयोग नहीं हो सकता।

संस्कृत में कहा गया है :

"न केवल प्रकृति : प्रयोक्तण्या,
नापि केवल: प्रत्यय: अपदं न प्रयुज्जीता"

- (महाभाष्य)

अर्थात न केवल प्रकृति (मूल शब्द, धातु) का प्रयोग करना चाहिए और न केवल प्रत्यय का अपद (शब्द को पद बनाए बिना) का प्रयोग न करें। इस बात को यों समझाया जा सकता है।

शब्द	पद
मूल शब्द (प्रकृति, प्रतिपादिक, धातु)	प्रकृति + प्रत्यय = पद

इससे स्पष्ट है कि प्रकृति और प्रत्यय के योग से पद बनता है और वाक्य में दोनों मिलकर प्रयुक्त होते है। अकेले कोई भी नहीं आता।

महर्षि पाणिनि का कहना है कि जिन शब्दों के अंत में सुप (विभक्ति प्रत्यय) और तिङ् (क्रिया के प्रत्यय) लगते हैं वे पद कहे जाते हैं। पद बनने के लिए शब्द में विभक्ति या क्रिया प्रत्यय लगने चाहिए।

महर्षि पाणिनि ने - 'सुपतिडन्त पद' कहा है। महर्षि पाणिनि का कहना है कि जिन शब्दों के अंत में सुप (विभक्ति प्रत्यय) और तिङ् (क्रिया के प्रत्यय) लगते है वे पद कहे जाते हैं। पद बनने के लिए शब्द में विभक्ति या क्रिया प्रत्यय लगने चाहिए। 'सुप्' प्रत्ययों को जोडने से संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण पद बनते हैं और तिङ् प्रत्ययों को जोड़ने से क्रियापद बनते हैं। संस्कृत में 'पत्र' एक शब्द है। इस रुप में यह शब्द वाक्य में प्रयुक्त नहीं होता। परंतु 'पत्रं पतति' वाक्य में पत्र पद है।

इसका तात्पर्य यह है कि पद बनने के लिए शब्द को वाक्य में प्रयुक्त होना पड़ता है। फिर चाहे वह वाक्य एक शब्द का बना हो या अनेक शब्दों का, क्योंकि प्रत्येक वाक्य एक पूर्ण अभिव्यक्ति है। वाक्य में प्रयुक्त होकर शब्द अनेक शब्दों से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है।

ऊपर लिखित बातों को संस्कृत तथा हिंदी के एक उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। जैसे -

"माषेषु अश्व बहनाति हरि"

संस्कृत भाषा के इस वाक्य में - माष, अश्व, बहन, हरि चार शब्द है। इन्हें शब्द मात्र या शुद्ध शब्द कहिए, परंतु ये चारों शब्द वाक्य में प्रयुक्त होकर परस्पर सम्बद्ध हो गए है। इनका यह पारस्परिक सम्बन्ध कतिपय प्रत्ययों के द्वारा स्पष्ट हुआ है। सुप्, अम्, तिङ् और सु ये प्रत्यय क्रमश: माष, अश्व, बहन और हरि शब्दों से जुड़कर वाक्य में प्रयुक्त इन शब्दों का स्वरूप व स्थिति स्पष्ट करते हैं। हरि 'कर्ता' है। वह घोड़ा बाँधने की क्रिया करता है। घोड़ा बाँधा जाता है और वह माष (उड़द) के खेत में बाँधा जाता है।

"राम ने रावण को मारा"

हिंन्दी भाषा के इस वाक्य में क्रमश: राम, रावण, बाण और मार शब्द है, ओर ने, को, से और आ सम्बन्ध तत्व है।

८.४ अर्थ तत्व और संबंध तत्व

वाक्य में दो तत्व होते है अर्थतत्व और सम्बन्धतत्व । दोनों में अर्थतत्व मुख्य है । सम्बन्धतत्व विभिन्न अर्थतत्वों को जोड़ता है। उनका पारस्परिक सम्बन्ध बताता है । उदाहरण - "राम ने रावण को बाण से मारा"। इस वाक्य में चार अर्थतत्व हैं - राम, रावण, बाण और मारना। वाक्य बनाने के लिए इन चारों में सम्बन्ध तत्व की आवश्यकता है। अत: यहाँ चार सम्बन्ध हैं - 'ने' बताता है कि राम बाण मारने वाला है; अत: वह कर्ता है; 'को' बताता है कि बाण जिसे लगा वह, रावण है। 'से' बताता है कि मारने का उपकरण 'बाण' है। 'मारना' से 'मारा' बनाया गया है । इसमें सम्बन्धतत्व मिल गया है। सम्बन्धतत्व स्पष्ट पहचाना जाता है। जैसे - ने, को, से और कहीं वह शब्द घुल-मिल जाता है। जैसे 'मारा' में।

अर्थतत्व और सम्बन्धतत्व को दूसरे उदाहरण से यों समझाया जा सकता है। अर्थतत्व उन तत्वों को कहते हैं, जो मानसिक प्रतिमाओं के भावों की अभिव्यक्ति करते हैं।

जैसे - "गुरु ने शिष्य से प्रश्न पूछा।"

इस वाक्य में गुरु, शिष्य, प्रश्न तथा पूछना अर्थतत्व है। सम्बन्धतत्व उन तत्वों को कहते है, जो उक्त प्रकार के व्यक्त भावों में परस्पर सम्बध की अभिव्यक्ति करते हैं। जैसे - ने, से, आ आदि। केवल अर्थतत्व पूरे भाव की अभिव्यक्ति करते हैं । अत: सम्बन्धतत्वों की आवश्यकता होती है। 'ने' लगाने से ज्ञात होता है कि गुरु कर्ता है, से लगाने से ज्ञात होता है कि शिष्य कर्म है, पूछना (पूछा) (आ) से ज्ञात होता है कि भूतकाल की क्रिया है। इसी प्रकार संस्कृत का वाक्य ले सकते है - 'वृक्षात पुष्पम् आनय'। इस वाक्य में अर्थतत्व है - वृक्ष, पुष्प आ + नी तथा सम्बन्धतत्व है - आत्, अम्, लोट।

८.५ सम्बन्धतत्व के प्रकार

विश्व की समस्त भाषाओंके विश्लेषण से सम्बन्धतत्वों के प्रकार दृष्टिगोचर होते हैं। वे इस प्रकार है।

१) शून्य - सम्बन्धतत्व :

इसे Zero element कहते हैं। शून्य तत्व से अभिप्राय है कि शब्द या धातु अपने मूल रूप में रहते हुए व्याकरणिक सम्बन्धों को बताते हैं । जैसे - बालिका, मधु, सरित्, जगत् आदि। ये प्रथमा एक वचन के रूप हैं । कर्ता अर्थ बताते है तथा इनके अन्त में कारक चिह्न नहीं लगते। अत: इन्हें शून्य तत्व कहते हैं । हिन्दी में आज्ञा अर्थ में क्रियापद प्राय: एक वचन आज्ञा अर्थ के रूप में हैं । तू पढ़, तू आ, तू लिख आदि । दूसरे शब्दों में यों कह सकते है कि कभी-कभी शब्दों में सम्बन्धतत्व नहीं जोड़ते। उन्हें ज्यों का त्यों छोड़ दिया जाता है । जैसे -

अँग्रेजी क्रिया - I go, you go क्रिया का एक वचन, बहु वचन We go, they go समान

यहाँ एक वचन तथा बहु वचन समान हैं, पर अर्थ को देखते हुए शून्य सम्बन्धतत्व हैं ।

हिन्दी	एक वचन	बहु वचन
	अध्यापक	अध्यापक + ...
	राजा	राजा + ...
	घर	घर + ...

२) शब्द - स्थान :

संसार की समस्त भाषाओंके वाक्यों में पदों का क्रम निश्चित होता है । तद्नुसार ही उसका अर्थ समझा जाता है । जैसे हिन्दी का पदक्रम या शब्दक्रम है - कर्ता - कर्म - क्रिया। किंतु अंग्रेजी में क्रम है - कर्ता - क्रिया - कर्म । यदि पदों या शब्दों का क्रम बदल दिया जाए तो अर्थ में अंतर आ जाएगा। जैसे -

Ram killed Ravana	राम ने रावण को मारा
Ravana killed Rama	रावण ने राम को मारा।

केवल स्थान बदलने से पूरा अर्थ बदल गया । शब्दों का स्थान भी कभी - कभी सम्बन्धतत्व का काम करता है । जैसे -

राज सदन - राजा का घर

सदन राज - घरों का राजा (अच्छा, बड़ा)

ग्राममल्ल - गाँव का पहलवान

श्यामघन: - काला बादल आदि

संस्कृत और हिंदी में समस्त (समास - युक्त) पदों में शब्दों का स्थान सम्बन्धतत्व का काम करता है । स्थान-भेद से अर्थ में, अंतर आ जाता है । शब्द - स्थान बदलने से उपमेय उपमान बन जाता है । तो कभी उपमान उपमेय बन जाता है ।

मुखं कमलम् इव सुन्दरम् । (मुख उपमेय, कमल उपमान)

कमलं मुखम् इव सुन्दरम । (कमल उपमेय, मुख उपमान)

दुसरे वाक्य में मुख कमल के समान सुन्दर नहीं रहा, अपितु कमल ही मुख के तुल्य सुन्दर हो गया।

चीनी भाषा में क्रम है - कर्ता - क्रिया - कर्म। केवल स्थान बदलने से कर्ता कर्म हो जाता है और कर्म कर्ता। जैसे -

वो त नि - मैं तुम्हें मारता हूँ। वि त वो - तू मुझे मारता है।

३) स्वतन्त्र शब्द :

संसार में कतिपय ऐसी भाषाएँ हैं। जिनमें स्वतंत्र शब्द सम्बन्धतत्व का काम करते है। हिन्दी में परसर्ग (ने, को, से, में, पर आदि) इसी वर्ग में आते हैं। इनका काम दो या अधिक शब्दों का वाक्य या वाक्यांशो से या शब्द - समूह से सम्बन्ध दिखाना है।

अँग्रेजी में From, For, of, in, on, it इसी वर्ग के है।

संस्कृत में इति, आदि, एवं, तथा, वा, कृते इसी श्रेणी के शब्द हैं।

चीनी भाषा में रिक्त (Empty) और पूर्ण (Full) दो प्रकार के शब्द होते है। रिक्त का प्रयोग सम्बन्धतत्व दिखाने के लिए होता है। जैसे -

ल्सि = का

यु = को

त्सुंग = से

लि = पर आदि

कभी-कभी दो स्वतंत्र शब्द भी सम्बन्धतत्व का काम करते हैं। जैसे जब मैं सेवा निवृत हो जाऊँगा, तब विदेश जाऊँगा। इसी प्रकार यदि ... तो यद्यपि... तथापि, ज्यों ...त्यों, हाँलाकि ... मगर।

अँग्रेजी if…. them, neither…. nor ये सभी शब्द स्वतंत्र सम्बन्धदर्शी हैं।

४) आंतरिक परिवर्तन :

शब्दों और धातुओं में उनके अंदर कुछ परिवर्तन कर देने से अर्थ में अंतर आ जाता है। ये तीन प्रकार का है। क) स्वर परिवर्तन ख) व्यंजन परिवर्तन ग) स्वर - व्यंजन परिवर्तन।

क) स्वर परिवर्तन :

केवल स्वरों में परिवर्तन कर देने से कभी-कभी सम्बन्धतत्व प्रकट किया जाता है। इसे अपश्रुति भी कहते हैं। जैसे -

अँग्रेजी	Sing	Sang Sung
	Find	Found
	Run	Ran
जर्मन	gehen (जाना)	ging (गया)
	geben (देना)	gaben (दिया)
संस्कृत	पुत्र	पौत्र
	कुन्ती	कौन्तेय
	सुभद्रा	सौभद्र
हिन्दी	मामा	मामी
	चाचा	चाची
	नाना	नानी

अरबी - फारसी में अंतर्वर्ती स्वर - परिवर्तन से अर्थ बदल जाता हैं -

जैसे - क् त ब् (लिखना) से किताब, कातिब (लिखने वाला), कुतुब (पुस्तके)

क्त्ल (मासा) से कातिल (मारने वाला)

कितात (युद्ध) कतील (जो मारा गया)

ख) व्यंजन - परिवर्तन

व्यंजन परिवर्तन से भी अर्थ बदल जाता है। जैसे -

भुज् (भक्ष्य) - भोग्य (उपभोग योग्य)

Send - भेजना, एहू - भेजा

ग) स्वर - व्यंजन परिवर्तन

स्वर और व्यंजन परिवर्तन से भी अर्थ बदल जाता है।

५) ध्वनि द्विरूक्ति

अनेक भाषाओं में पूरे अंग या उसके अंश की द्विरूक्ति या आवृति सम्बन्धतत्व का काम करती है। संस्कृत में धातु आदि की द्विरूक्ति (दो बार पढ़ना) में प्रथम अंश को अभ्यास कहते हैं। संस्कृत में - द्विरूक्ति से अर्थ में अंतर हो जाता है। जैसे -

दृश्य - देखना, ददर्श - देखा

पठ - पढ़ना, पपाठ - पढ़ा

६) आगम :

शब्दों और धातुओं में उनसे पहले, मध्य, अन्त में कुछ सम्बन्ध तत्व जुड़ जाते हैं। उन्हें आगम कहते हैं। ये तीन प्रकार के हैं - ८. आदि सर्ग, २. मध्य सर्ग, ३. अंत सर्ग

७) ध्वनि विनियोजन :

कभी - कभी ध्वनियों को घटाकर सम्बन्धतत्व का काम किया जाता है। प्रेंÀच भाषा का उदाहरण भाषाविद 'Nida' ने दिया है।

स्त्रीलिंग		पुल्लिंग	
उच्चरित रूप	लिखित रूप	उच्चरित	लिखित
Sul	Souls (पी)	Su	Soul
Ptit	Petite	Pti	Petit

८) स्वराघात और लय :

स्वाराघात और लय, तान भी सम्बन्धतत्व का काम करते हैं। इससे अर्थ - भेद हो जाता हैं। इसके लिए संस्कृत का 'इन्द्रशत्रु' शब्द उत्तम उदाहरण है। इस शब्द का अंतिम वर्ण 'त्रु' उदात्त होने पर अर्थ होगा इन्द्र का शत्रु (वृत्र), आदि वर्ण 'इ' पर उदात्त होगा तो अर्थ होगा - इन्द्र है शत्रु (नाशक) जिसका, वह।

८.६ रूप-परिवर्तन की दिशाएँ

मनुष्य हमेशा सरलता और सहजता का पुजारी रहा है। जब भाषा में किसी एक शब्द के अपवाद रूप में पाये जाने वाले अनेक अनेक रूप मस्तिष्क के लिए बोझ हो जाते हैं तब हम उनके रुपों का एकीकरण या सरलीकरण करते हैं। रूप परिवर्तन के कारणों के फलस्वरूप शब्दों में अनेक प्रकार का विकार आ जाता है। यह रूप विकार मुख्य रूप से निम्न दिशाओं में होता है - भोलानाथ तिवारी के अनुसार रुप परिवर्तन की दिशाएँ इस प्रकार है -

१) पुराने सम्बन्धतत्व का लोप तथा नए का प्रयोग :

ध्वनि परिवर्तन से प्राय: पुराने सम्बन्धतत्व जब लुप्त हो जाते हैं तो अर्थ की स्पष्टता के लिए नए सम्बन्धतत्व जोड़े जाने लगते हैं और इस प्रकार परिवर्तित रूप प्रयोग में आने लगते हैं। संस्कृत राम:, राम, रामस्य, रामे आदि के स्थान पर आज राम ने राम को, राम का, राम में आदि का प्रयोग इसी का उदाहरण है।

२) सादृश्य के कारण नए रूपों का आगमन :

हिन्दी में बोलचाल में 'चलिए' आदि के सादृश्य पर 'किया' की जगह 'करा' 'कीजिए' की जगह 'करिए' का प्रयोग होता है। यही स्थिति संस्कृत में भी देखी जा सकती है। संस्कृत 'अग्रे' होना चाहिए था, किन्तु प्राकृत में 'अग्गिस्स' मिलता है। इससे स्पष्ट है कि अकारान्त शब्दों का प्रत्यय 'स्स' सादृश्य के कारण आ गया है।

३) अतिरिक्त प्रत्ययों का प्रयोग :

इसमें एक प्रत्यय के रहते हुए दूसरे अतिरिक्त प्रत्यय का प्रयोग मिलता है। जैसे - जवाहरात - जवाहरतों। यहाँ ब. व. का प्रत्यय 'आत' रहते हुए भी 'ओ' का अतिरिक्त प्रयोग हुआ है।

ऐसे ही जेवरातों, कागजातों में भी अतिरिक्त प्रत्यय का प्रयोग है। अनेकों में 'ओ' अतिरिक्त प्रत्यय है।

४) अतिरिक्त शब्द प्रयोग :

सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्तम में अतिरिक्त शब्दों का प्रयोग किया गया है। 'सर्व' शब्द में ही उसका अर्थ निहित है। यहाँ श्रेष्ठ तथा उत्तम अतिरिक्त शब्दों की आवश्यकता नहीं है।

५) गलत प्रत्यय का प्रयोग :

'इंद्रियें' शब्द के स्थान पर 'इंद्रियाँ' रूप इसका उत्तम उदाहरण है। 'इंद्री' शब्द का प्रयोग लुप्त हो गया और दूसरी ओर इंद्रियों का अत: इंद्रिय - इंद्रियाँ को सम्बद्ध मान लिया गया।

६) नया प्रत्यय :

पहले प्रभावशाली शब्द चलता था लेकिन आज प्रभावशाली के स्थान पर प्रभावी चल पड़ा।

७) आधा नया आधा पुराना प्रत्यय :

'छठा' के स्थान पर 'छठवाँ' में 'छ' मूल शब्द है, 'छठा' का पुराना प्रत्यय है 'छ' तथा वा, पाचवाँ, आठवाँ, सातवाँ आदि के सादृश्य पर आया नया प्रत्यय है।

८) मूल में परिवर्तन :

इससे भी रूप परिवर्तन होता है। 'मुझको' के स्थान पर 'मेरे को' अथवा 'तुझको' के स्थान पर 'तेरे को' में प्रत्यय वही है, केवल मूल बदल गया है।

९) मूल और प्रत्यय दोनों में परिवर्तन :

ऐसा कम होता है। अंग्रेजी में go का भूतकाल went इसी प्रकार का है।

८.७ रूप - परिवर्तन के कारण

ध्वनियों में परिवर्तन के समान रूपों या पदों में भी परिवर्तन होता रहता है। ध्वनि-परिवर्तन का सम्बन्ध किसी भाषा की विशिष्ट ध्वनि से होता है। वह प्राय: उन सभी शब्दों को प्रभावित करता है। जिनमें वह ध्वनि होती है। रूप-परिवर्तन का क्षेत्र अपेक्षाकृत सीमित है। वह किसी एक पद या शब्द के रूप को ही प्रभावित करता है। रूप-परिवर्तन के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं।

१) नियमन : भाषा में कुछ नियम अधिकांश रुपों पर लागू होते हैं, जैसे भूतकालिक रूप बनाने के लिए क्रिया के अंत में आ लगा दिया जाता है, मार - माराचल - चला, बैठ - बैठा आदि। पर कुछ अपवाद भी होते हैं। नियमित रूपों को याद रखना आसान होता है पर अपवादों को याद रखना कठिन है। उनके स्थान पर नियमित रूपों का प्रयोग करने लगता है, जिससे रूप परिवर्तन हो जाता है। जाने-अनजाने अनियमित रूपों के बदले नियमित रूपों का प्रयोग करना चाहता है। जैसे - हिन्दी में पुराने मानक रूप 'हजिए' तथा 'कीजिए' हैं किन्तु ये अपवाद नियम विरोधी हैं। सामान्य नियम धातु में 'इए' जोड़कर रूप बनाने का है।

जैसे - आइए, चलिए, करिए, बैठिए आदि। 'मर' का 'मरा', 'चल' का 'चला', 'बैठ' का 'बैठा' नियमित रूप है पर 'कर' का 'किया' अपवाद है। परिणामत: बहुत से लोग इसका नियमन कर 'कर' के 'करा' का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार पहले खारी ताजा, भारी मानक हिन्दी के अपरिवर्तनीय विशेषण थे। परंतु अन्य ईकारान्त (बड़ी, अच्छी, मीठी) आदि विशेषण परिवर्तनीय हैं, अत: इसी नियम के आधार पर कुछ लोग इनका भी रूप बदल देते हैं, खारा पानी (होना चाहिए खारी पानी), ताजा खबर (होना चाहिए, ताजी खबर) भारा बदन (होना चाहिए भारी बदन) यह नियमन साहचर्य के कारण होता है।

२) स्पष्टता : प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि दूसरा व्यक्ति उसकी बात को ठीक तरह से समझे, उसकी बात इतनी स्पष्ट हो कि दूसरे को समझने में कठिनाई न हो। अत: जब उसकी समझ में आता है कि पुराने रुपों के कारण उसकी बात अस्पष्ट हो गई है, या हो सकती है, तो वह उसके स्थान पर नये रूप बना देता है। ऐसे नये रूप पुराने रूपों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होते है। पहले हिन्दी में अरबी-फारसी के रूप बहुतायत में चलते थे, आज उनका प्रचलन कम हो गया है। पहले 'दर-हकीकत' 'दर -अस्सल' रूप चलते थे। आज ये रूप अस्पष्ट हो जाने के कारण अब नये रूप चल पड़े है - 'दर हकीकत में', 'दरसल में'। संस्कृत में 'श्रेष्ठ' का अर्थ था सबसे अच्छा, परंतु संस्कृत व्याकरण की जानकारी न देने से श्रेष्ठ शब्द अस्पष्ट हो गया और उसके स्थान पर नये रूप प्रयुक्त हैं। - सर्वश्रेष्ठ, श्रेष्ठतम। इसी प्रकार 'हम', 'तुम', 'वे', ये मूलत: बहु वचन है, किन्तु आज इनका आदर के लिए एक वचन में प्रयोग होने लगा है। इस प्रकार अस्पष्टता का संकट आ गया। 'हम आ रहे हैं', 'तुम आ जाओ', 'वे गए', 'ये आये' जैसे प्रयोगों को ए.व. माना जाए, या ब.व.। इससे छुटकारा पाने हेतु ब.व. के नये रूप प्रयुक्त होने लगे है। हम लोक, तुम लोग, ये लोग आदि।

३) अज्ञान : अज्ञान के कारण रूप - परिवर्तन होता है। अज्ञान के कारण अस्पष्टता है। जब भाषा का विपुल ज्ञान न हो तब यह स्थिति देखी जा सकती है। जैसे, 'फजूल' की जगह 'बेफजूल', पूज्य की जगह 'पूज्यनीय', 'पाण्डित्य' की जगह 'पांडित्यता', 'अभिज्ञ' की जगह, 'भिज्ञ' का प्रयोग ऐसे ही उदाहरण हैं। इस प्रकार के रूप अपरिवर्तन के मूल में अज्ञानता दिखायी देती है।

४) बल : बल देने के प्रयास में भाषा में नये प्रयोग आ जाते हैं। 'अनेक' के स्थान पर 'अनेकों', 'खालिस' की जगह 'निखालिस', 'खाकर' की जाकर 'खाकर' के बल के कारण ही चल पड़े हैं।

५) नवीनता : साहित्यकार कभी -कभी नवीनता लाने के लिए या अपनी मौलिकता दिखाने के लिए नये रूप बना लेते हैं। 'प्रभावशाली के स्थान पर 'प्रभावी' का प्रयोग इसी प्रकार है।' 'स्वीकार किया' के स्थान पर 'स्वीकारा', 'फिल्म बनाया' के स्थान पर 'फिल्माया', 'हथियाया', 'लतियाया', 'जुतियाया' 'घकियाया' ऐसे ही रूप है।

६) आगम : जिस प्रकार आगम से ध्वनि में परिवर्तन होता है वैसे ही आगम के रुप परिवर्तन हो जाता है। कभी कोई शब्द आ जाता है और पहले रूप को बदल देता है। जैसे 'नौकर चाकर' में 'चाकर' आगम है। 'शादी ब्याह' में ब्याह का आगम हुआ हैं।

७) लोप : आगम की तरह लोप से भी रूपों में परिवर्तन हो जाता है। सुविधा के लिए लम्बे प्रयोगों के स्थान पर छोटे प्रयोग चल पड़ते हैं। जैसे - 'रामचरित - मानस' की जगह केवल 'मानस' या 'महाभारत' के स्थान पर केवल 'भारत'।

८) ध्वनि - परिवर्तन : ध्वनि परिवर्तन के कारण भी रूपों में परिवर्तन हो जाता है। संस्कृत ध्वनि-परिवर्तन के कारण जब विभक्तियाँ परिवर्तित होते-होते लुप्त हो जाती हैं तो उनके स्थान पर नई भाषिक इकाइयों का प्रयोग करना पड़ता है, जिनके कारण नये रूप बन जाते हैं। उदाहरण के लिए संस्कृत के कारकीय रूपों के साथ यही हुआ। धीर, धीरे विभक्तियों लुप्त हो गई हैं। इसी कारण परसर्ग-युक्त नये रूप प्रयोग में आ गये हैं। जैसे - 'राम' के स्थान पर 'राम ने', 'रामस्य' के स्थान पर 'राम का', 'रामम्' के स्थान पर 'राम को', 'रामेय' के स्थान पर 'राम से' आदि नये रूप इसी के परिणाम स्वरूप है।

८.८ रूपिम और संरूप

रूपिम को रूपग्राम और पदग्राम भी कहते हैं। जिस प्रकार स्वन-प्रक्रिया की आधारभूत इकाई स्वनिम है, उसी प्रकार रूप प्रक्रिया की आधारभूत इकाई रूपिम है।

रूपिम की परिभाषा : विभिन्न भाषा वैज्ञानिकों ने रूपिम को भिन्न-भिन्न रूपों में परिभाषित किया है। कुछ प्रमुख विद्वानों की परिभाषाएँ द्रष्टव्य है -

१) डॉ. उदय नारायण ने रूपिम की परिभाषा इस प्रकार दी है, 'पदग्राम (रूपिम) वस्तुत: परिपूरक वितरण या मुक्त वितरण में आये हुए सहपदों (संख्या) का समूह है।'

२) डॉ. सरयूप्रसाद के अनुसार, 'रूप भाषा की लघुतम अर्थपूर्ण इकाई होती है जिसमें एक अथवा अनेक ध्वनियों का प्रयोग किया जाता है।'

३) डॉ. भोलानाथ के मतानुसार, 'भाषा या वाक्य की लघुतम सार्थक इकाई रूपग्राम है।'

४) डॉ. जगदेव ने लिखा है, 'रूप अर्थ से संश्लिष्ट भाषा की लघुतम इकाई को रूपिम कहते हैं।'

५) ब्लाक के अनुसार, 'कोई भी भाषिक रूप, चाहे मुक्त अथवा आबध्द हो और जिसे अल्पतम या न्यूनतम अर्थमुक्त (सार्थक) रूप में खण्डित न किया जा सके, रूपिम होता है।'

रूपिम का स्वरूप:

रूपिम के स्वरूप को उसकी अर्थ - भेदक संरचना के आधार पर निर्धारित कर सकते है। प्रत्येक भाषा में रूपिम व्यवस्था उसकी अर्थ - प्रवृत्ति के आधार पर होती है। इसलिए भिन्न-भिन्न भाषाओं के रूपिमों में भिन्नता होना स्वाभाविक है। मानक हिन्दी में प्रयुक्त 'पढ़वाऊँगा' शब्द या पद पर विचार किया जाए तो इसमें निम्नलिखित लघुतम अर्थवान इकाइयाँ दृष्टिगोचर होती है।

१) पढ़ (धातु - रुपिम)

२) वा (प्रेरणार्थक रूपिम)

३) ऊँ (उत्तम पुरुष एकवचन सूचक रूपिम)

४) ग (भविष्यत कालसूचक रूपिम)

५) आ (पुल्लिंग सूचक रूपिम)

संरूप :

किसी रूपिम का वह ध्वन्यात्मक विभेद जो किसी परिवेश विशेष में प्रयोग में आता है 'संरूप' कहलाता है। अर्थात वह रूपिम का ही एक दूसरा रूप होता है, जिसमें ध्वनियाँ थोड़ी-बहुत अलग हो जाती हैं और उस प्रकार बने हुए ध्वनि समूह का प्रयोग किसी परिस्थिति विशेष में किया जाता है।

उदाहरण के लिए निम्नलिखित शब्द - युग्म को देखा जा सकता है -

लड़का, लड़क

बच्चा, बच

घोड़ा, घुड़

इन शब्द - युग्मों में देखा जा सकता है कि पहले उदाहरण में 'लड़का' शब्द रूपिम है, इसके दूसरे रूप 'लड़क' का प्रयोग तब होता है जब उसके वाद 'पन' प्रत्यय आता है। इस सूत्र रूप में हम इस प्रकार दिखा सकते हैं -

लड़का + पन = लड़कपन

अर्थात - लड़का शब्द पन प्रत्यय के साथ जुड़ते समय यह 'लड़क' में बदल गया। इसी प्रकार 'बच्चा' शब्द भी 'पन' के साथ जुड़ते समय 'बच' में बदल जाता है -

बच्चा + पन = बचपन

'घोड़ा' शब्द को जब 'दौड़' के साथ जोड़ा जाता है तो वह 'घुड़' में बदल जाता है। अत: ये सभी शब्द युग्म आपस में 'रूपिम' और 'संरूप' है।

अत: इसे इस प्रकार दिखा सकते हैं -

रूपिम	संरूप
लड़का	(लड़का, लड़क)
बच्चा	(बच्चा, बच)
घोड़ा	(घोड़ा। घुड़)

यहाँ ध्यान देने वाली बात हैं कि 'रूपिम' भी 'संरूप' के अंतर्गत एक अंग होता है।

८.९ सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से रूप विज्ञान का स्वरूप, अर्थतत्व और संबंध तत्व, उसके प्रकार, रूप परिवर्तन की दिशाएँ एवं उसके कारण, रूपिम और स्वरूप आदि को जाना हैं। इसके साथ ही रूप विज्ञान को क्या कहा जाता है इसकीं भी जानकारी प्राप्त हुई है।

८.१० अतिलघुत्तरीय प्रश्न

१) रूप विज्ञान को अंग्रेजी में क्या कहते है ?

२) रूपिम का दूसरा नाम क्या है ?

३) 'भाषा या वाक्य की लघुत्तम सार्थक इकाई रूपग्राम है।" यह परिभाषा किसकी है ?

४) संबंध तत्व में आंतरिक परिवर्तन के कितने प्रकार है ?

५) अर्थतत्व किसे कहते है ?

८.११ लघुत्तरीय प्रश्न

१) रूप विज्ञान के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए?

२) रूप विज्ञान के संदर्भ में अर्थतत्व और संबंध तत्व पर प्रकाश डालिए?

३) रुपिम और संरूप को स्पष्ट करे?

८.१२ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) रूप विज्ञान में रूप परिवर्तन की दिशाएँ और कारणों को स्पष्ट कीजिए?

२) रूप विज्ञान में अर्थ तत्व और संबंध तत्व की चर्चा करते हुए उसके प्रकारों पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

८.१३ संदर्भ ग्रंथ

१. भाषा विज्ञान - डॉ. भोलनाथ तिवारी

२. भाषा विज्ञान के अधुनातम आयाम - डॉ. अंबादास देशमुख

३. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी

४. हिंदी भाषा का उद्भव और विकास - डॉ. उदयनारायण तिवारी

५. हिंदी भाषा, व्याकरण और रचना - डॉ. अर्जुन तिवारी

❖❖❖❖